"पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्त्री – शिक्षा का विकास"
(सन् १९५० ई० – १९९० ई० तक)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के अन्तर्गत
पी–एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

१९९६

निर्देशिका:
डा० श्रीमती मृदुला भदौरिया
रीडर, डिपार्टमेंट आफ एजूकेशन
फैकल्टी आफ एडवांस्ड स्टडीज
इन सोशल साइंसेज
श्री शाहूजी महाराज कानपुर विश्वविद्यालय
कानपुर

शोधछात्रा
श्रीमती भावना कुमार

डा0 (श्रीमती) मृदुला भदौरिया
रीडर - डिपार्टमेन्ट आफ एजूकेशन
फैकल्टी आफ एडवांस्ड स्टडीज इन सोसल साइन्सेज,
कानपुर विश्वविद्यालय,
कानपुर।

प्रमाण - पत्र

****

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती भावना कुमार** ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत पी-एच0डी0 (शिक्षा) की उपाधि हेतु **"पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्त्री-शिक्षा का विकास" (सन् 1950 ई0 से 1990 ई0 तक)** शीर्षक पर मेरे निर्देशन में कार्य किया है और उन्होंने विश्वविद्यालय के नियमानुसार अपनी उपस्थिति (200 कार्य दिवस से अधिक) पूरी करते हुये अपना शोध-कार्य सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इनका मौलिक कार्य है। इसमें **श्रीमती भावना कुमार** ने शोध-विषय में न केवल नये तथ्यों को प्रस्तुत किया है प्रत्युत उनके द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों में भी मौलिकता परिलक्षित होती है।

MBhadauria

डा0 (श्रीमती) मृदुला भदौरिया

निर्देशिका

प्राक्कथन

****

मानव इतिहास में शिक्षा समाज के विकास के लिये एक आधार रही है। यहाँ तक कि राष्ट्रों तक के विकासमें मानव संसाधनों द्वारा अदा की गई भूमिकायें महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं, जो शिक्षा का मुख्य कार्य रहा है। आज शिक्षा द्वारा मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया जाना नितान्त आवश्यक है। हमारा देश एक प्रजातंत्र देश है इसमें उत्तम और आदर्श नागरिकता हेतु, शिक्षा देना अनिवार्य है। समाज में स्त्री-शिक्षा का कितना महत्व है। प्रत्येक इस ओर अग्रसर होना चाहिये। उत्तर प्रदेश जो क्षेत्रफल में अत्यन्त विस्तृत है अपनी इस ओर गहन समस्यायें लिये हुये हैं। विशेषकर पूर्वी-उत्तर-प्रदेश में क्या-2 नई योजनायें और प्रयास इसकी प्रगति के हुये हैं। प्रस्तुत शोध प्रबनध में उनका विस्तृत आंकलन प्रस्तुत हुआ है।

सर्वप्रथम मैं अपनी पूज्य निर्देशिका **डा0 (श्रीमती) मृदुला भदौरिया जी** के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर तथा मेरे शोध का निर्देशन कर मेरी समस्याओं का समाधान किया। आपने मुझे शक्ति, बल और प्रेरणा देकर कृतार्थ किया है जिससे यह प्रयास प्रस्तुत हो सका है। साथ में मैं **डा0 कौशलेन्द्र भदौरिया (डी0 लिट्) उपाचार्य, राजकीय महाविद्यालय, मंधना** की अति आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे पुत्रीवत स्नेह दिया है व प्रेरणा के स्रोत रहे हैं उनकी कृपा ही मेरी पथ प्रदर्शक रही है।

मैं साथ में अपने **पति श्री कपिल कुमार जी** के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त कर उन्होंने पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुये मुझे हर पग पर सहायता व ढाढस बँधाया है, जिसका यह परिणाम सामने आ सका है। साथ में मेरे पूज्य ससुर **श्री वी0 के0 मित्तल जी** व पूज्य सास जी **श्रीमती मीना मित्तल** का शुभाशीवाद है जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका।

मैं उन सभी शिक्षाविदों, सहभागियों, मित्रों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष रूप में इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सहयोग दिया है। पुस्तकालयों, शिक्षा निदेशालय और संग्रहालयों के सहयोग से जो रूप इस शोध प्रबन्ध को मिला है हृदय से उनका आभार प्रकट करती हूँ।

साथ में मैं **श्री शिव औतार वर्मा, (टाईपिस्ट)** की भी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध को सुन्दर व सुस्पष्ट टाईप करके सम्पन्न किया है।

अन्त में यह प्रयास आपके समक्ष है जो भी शिक्षा जगत को इसके द्वारा यदि लाभ हो सकेगा तो मैं अपने को धन्य मानूँगी। आप सभी के शुभाशीवाद से यह प्रयास प्रस्तुत हुआ है यह मेरा सौभाग्य है।

श्रीमती भावना कुमार

****

अ नु क्र म णि का

****

*****

विषय का महत्व

****

मनीषियों ने देशकाल और समय को चार वर्गों में विभक्त किया है जो सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग के नाम से जाने जाते हैं। सृष्टि का अनवरत चक्र इन्हीं चार वर्गों की क्रमबद्धता में बँधा हुआ है। आधुनिक युग में इस पवित्र भू भारती पर प्रचलित आदर्श लगभग इन्हीं प्रथम तीन वर्गों के चरण चिह्नों के रूप में अंकित माने जाते हैं। दूरी बहुत ही अधिक है परन्तु मनीषियों के अनुसार यह चक्र अनवरत रूप से चल रहा है। प्रत्येक युग में आदर्शों की स्थापना का प्रश्न रहा है। चक्र के अन्तिम वर्ग को जिस "कलिकाल" के रूप में सुशोभित किया गया है, वही आज का आधुनिक भारत है। गणितज्ञों के अनुसार जिसके लगभग 5086 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ऐसा कहा जाता है कि प्रत्येक वर्ग में अलग-अलग

जातियाँ अलग-अलग ढंग से अपना जीवन-यापन करती थीं। शिक्षाविदों ने सृष्टि के इस अनवरत चक्र को शिक्षा के अनुकूल कुछ अन्य भागों में विभक्त किया। वे भाग प्राचीन शिक्षा वैदिक, बौद्ध, तब्य ब्राह्मण, जैन शिक्षा युगीन, इस्लामी शिक्षा युगीन तथा पाश्चात्यवादी युगीनों के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं।

हमारी भू-भारती वर्तमान शताब्दी से पूर्व पराधीनता की श्रंखलाओं में जकड़ी हुई थी। शताब्दियों से पराधीनता की श्रृंखलाओं में बन्दी भारत ने 15 अगस्त सन् 1947 ई0 को मुक्त होकर स्वाधीनता के स्वच्छन्द वातावरण में श्वांस ली थी। स्वाधीनता से पूर्व माँ भारती की प्रत्येक स्थिति का गवाही इस देश का पुरातन इतिहास है। पुरातन इतिहास के पन्नों को पलटने, उसकी प्रत्येक पंक्ति का दृष्टिपात करने तथा विश्लेषण करने से बुद्धजीवियों के मस्तिष्क में जो आभास हुआ, उसने उसके मस्तिष्क के तन्तुओं को झकझोर डाला। अर्थ, धर्म, ज्ञान और मोझ चारो समस्याओं का बन्धन उनके समक्ष सूखे मैदान की तरह पड़ा था। अतः स्पष्ट है कि इस देश की आर्थिक स्थिति इतनी ज्यादा असन्तुलित थी कि संसार के विभिन्न देशों की तुलना में यहाँ की जनवासियों को वैभव समानता तथा सम्पन्नता प्रदान करना एक बहुत बड़ी समस्या थी। देश के कुछ इने, गिने, बुद्धिप्रज्ञ प्राणी, जिन्होंने इस देश के बाहर शिक्षा को ग्रहण कर लिया था। देश की तुलनात्मक स्थिति को समझते थे, अतः वे ही इस देश की प्रारम्भिक राजनीति के माने हुए शिलाधार थे।

बुद्धिवादियों की आन्तरिक प्रेरणा ने देश के सुसम्य संचालन के लिए एक "मार्गदर्शक ग्रन्थावली" की रचना करनी आवश्यक समझी। अब प्रश्न था सुन्दर "संविधान" के गठन का। जिसमें शिक्षा

के लिए संवैधानिक व्यवस्था का रूप देकर विभिन्न प्रकार की योजनाओं को कार्यान्वित करने का दृढ़ संकल्प किया जा सके। अन्ततः उस ग्रन्थावली का नाम ही "संविधान" रखा गया।

देश की स्वाधीनता के पश्चात् हमारे देश के नेताओं ने भारतीय सरकार के गणतन्त्रीय स्वरूप की रचना की। प्रायः हमारे देशवासियों ने सरकार के निर्देशन में परिपल्लवित होना चाहती थी जिसके लिए उसने स्वतः सरकार के इस स्वरूप को स्वीकार किया और गणराज्य की स्थापना को देश के कल्याण का एक साधन माना। गणराज्य में भारत के उत्थान के लिए देश की जनता का शिक्षित होना अति आवश्यक समझा गया, क्योंकि देश की शिक्षित जनता ही सरकार के प्रजातान्त्रिक भार के स्वरूप को वहन करने में सक्षम हो सकती है। अतः देशवासियों के लिए सुख सुविधा की अनन्य व्यवस्थाओं में शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी।

हम जानते हैं कि भोरत के विभिन्न जाति एवं धर्मों के लोग निवास करते हैं। परन्तु अधिकांशतः जन मानस स्वतन्त्रता से पूर्व आर्थिक सीमा के निम्न स्तर पर जीवन यापन कर रहे थे साथ ही अधिकांश मात्रा में वे लोग अशिक्षित भी थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी यही स्थिति बनी हुई थी। देश की इस स्थिति को सुधारने एवं नवीन मार्गदर्शन के लिए हमारे देश की इस स्थिति में संविधान निर्माताओं ने समानता का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए "नीति निर्देशक तत्वों" को संविधान में सम्मिलित कर लिया। गणतंत्र के आधार राजनीतिज्ञ देश की शैक्षिक स्थिति से पूर्ण रूपेण परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने अशिक्षा के वातावरण में परिवर्तन करने की आकांक्षाएं प्रकट की, ताकि समाजवादी अपने कल्याण के साथ-साथ भारत देश तथा सरकार की प्रजातान्त्रिक गतिविधियों में सहायक सिद्ध हो सकें। यही कारण है कि स्वाधीनता के समय देश की स्थिति को विकसित करने के लिए जनमानस की प्रत्येक इकाई के विकास पर पूर्ण ध्यान देना आवश्यकत हो गया था।

अतः संविधान निर्माताओं ने इस दिशा में पूर्ण ध्यान देने के लिए अनुच्छेद 45 एवं अनुच्छेद 46 की व्यवस्था की। अनुच्छेद 45 का सम्बन्ध भारत वर्ष की "अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा" से करके शिक्षा

के कार्यक्रमों को विकसित बनाने की चेष्टा की गयी है साथ ही साथ निम्नवर्गीय एवं दुर्बल वर्गों की शिक्षा के लिए अनुच्छेद 46 की व्यवस्था करके संविधान में अवन्धित वर्ग को न्यायिक दिशा प्रदान की गयी है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए मनु ने समाज का वर्गीकरण व्यवसाय तथा पेशे के आधार पर किया था। उनका सैद्धान्तिक जातिवाद का आधार व्यवसाय था जिसमें यह अपेक्षा की जाती थी कि लगातार एक ही व्यवसाय करते रहने में कार्य दक्षता की प्रगति बढ़ जाती है। उनके वर्गीकरण में कोई मनुष्य किसी जाति में पैदा हुआ है तो वह उस जाति का न होकर उसकी गिनती उस

जाति में की जाएगी जिस व्यवसाय को उसने अपनाया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भारत की सामाजिक व्यवस्था में एक ऐसी जाति की भी उत्पत्ति हुई जो कि समाज के अन्य वर्गों की सेवा में लगे रहते थे, जैसे- धोबी, नाई, धानुक, पासी, चमार, भंगी आदि परन्तु मनु जी ने यह कभी भी नहीं सोचा था कि कुछ समय बाद जाति का आधार व्यवसाय तथा पेशा न होकर संकीर्ण रूप में जो जिस जाति में पैदा हुआ है, उसी जाति का होकर रह जाएगा। अगर कोई ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है, उसी जाति का होकर रह जाएगा। अगर कोई ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है परन्तु व्यवसाय और पेशे से वह ब्राह्मण के कार्य नहीं करता है तो भी उसे ब्राह्मण का दर्जा दिया जाएगा उसी प्रकार यदि कोई चमार जाति में पैदा हुआ है तो वह चाहे कितना ही बड़ा पंडित क्यों न हो उसे चमार ही माना जाएगा। यह देश का दुर्भाग्य ही रहा कि मनु की सामाजिक व्यवस्था के वर्गीकरण के कारण एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई जिसे प्राचीन समय में शुद्ध के नाम से पुकारा गया। जो कि व्यवसाय से उच्च समाज की सेवा करते थे परन्तु उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा कभी भी नहीं दिया गया। जो अछूत के

घर पैदा हुआ वह सर्वदा अछूत ही रहा है। दुर्भाग्य से उसके लगभग सभी सामाजिक व मानसिक अधिकार छीन लिए गए। देश में स्वतंत्रता के आंदोलन के समय महात्मा गाँधी ने अछूत समाज के उत्थान के लिए जो भी कार्य किए वह विस्मरणीय है। उससे पहले आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अछूतों के उत्थान के लिए बहुत ही सार्थक प्रयत्न किए। श्री बाब भीमराव अम्बेदकर ने भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा विमुक्त जातियों के उत्थान के लिए संविधान की धाा 46 में प्राविधान किया कि उपरोक्त जाति के प्रत्येक व्यक्ति को शैक्षिक सामाजिक उत्थान करना सरकार के मुख्य कार्यों में से एक कार्य होगा।

समस्या कथन :

शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानदान करना और प्रशिक्षण देना तो है ही, परन्तु इसके साथ ही साथ शिक्षा का एक सर्वमान्य उद्देश्य है - मानव को मानव बनाना, उत्तम मानव बनाना। यह अत्यनत ही कठिन कार्य है और इसकी पूर्ति के लिए अभी तक कोई शिक्षा पद्धति उद्भूत नहीं हो सकी है। मनुष्य का पर्यावरण समझाने और बदलने के लिए बहुत कुछ किया गया है, परन्तु स्वयं मनुष्य को समझने और बदलने के लिए बहुत ही कम काम किया गया है। प्राचीन काल में हमारे यहाँ बिल्कुल ही दूसरी बात थी। पर्यावरण को नश्वर अथवा असत् माना जाता था। उसे समझना और उसमें परिवर्तन करना आवश्यक था और सो भी केवल उतना जितना कि मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक था। सत् था स्वयं मनुष्य। इस बात पर पूरा जोर दिया जाता ाा कि मनुष्य इस बात को समझ सके कि वह क्या है और वह कौन है। यह ज्ञान प्राप्ति का भी उद्देश्य माना जाता था और आनन्द प्राप्ति का भी। दुर्भाग्य की बात है कि मानवीय संस्कृति अथवा आत्मोन्नति आज अनुत्पादक शाब्दिक परिपाटी के रूप में रह गयी है। उसके साथ कुछ वाह्य शारीरिक क्रियाएं भी जुड़ गयी हैं। उनके द्वारा न तो मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है और न सत्य का दर्शन हो सकता है। मानव की सच्ची मानवता की ओर बढ़ने का जो लक्ष्य है, वह उससे पूरा नहीं होगा।

किसी राष्ट्र के जीवन में स्त्री शिक्षा का बड़ा महत्व होता है। स्त्री शिक्षा में शिक्षित महिलाओं द्वारा ही राष्ट्र की उस जन शक्ति की पूर्ति होती है। इनमें भी ऐसे सभी कार्य करने में सक्षम होती है जिनके लिए सूक्ष्म विवेक व बुद्धि तथा उच्च कोटि के कौशल की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए बिना मानव जाति के एक वर्ग स्त्री शिक्षा के बड़े-बड़े इन्जीनियरों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों, तकनीक विशेषज्ञों तथा उद्योग-प्रबन्धक आदि का निर्माण सम्भव नहीं है। यह स्पष्ट है कि राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति, सैनिक शक्ति और उच्चतम साहित्य और संस्कृति के निर्माण की पूर्ति भी स्त्री शिक्षा द्वारा ही सम्भव होती है।

भारतवर्ष में स्त्रियाँ पूरी जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत भाग हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् विविभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सरकार ने स्त्री शिक्षा के विकास तथा उसे प्रोत्साहन देने का प्रयास किया। समय-2 पर विभिन्न आयोगों व समितियों ने भी इस बात की अनुशंसा की कि स्त्री शिक्षा को समुचित प्रोत्साहन मिलना चाहिये। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि राष्ट्र ऐसी स्थिति में है कि वह केवल, लड़के या लड़की में से, एक को ही शिक्षित कर सकता है, तो उसे लड़की को शिक्षित कराना चाहिये। क्योंकि बालिका की शिक्षा एक पूरे परिवार की शिक्षा होगी। स्वतंत्रता के पश्चात जहाँ स्त्री शिक्षा का उद्देश्य "कल्याण" मात्र था, वहीं सातवीं पंचवर्षीय योजना में उसने "विकास" का लक्ष्य रखा। आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह उद्देश्य विकसित होकर "महिलाओं को सशक्त" (Employment of Women) बनाना हो गया।

स्त्री शिक्षा का इतना अधिक महत्व होते हुए भी न केवल अपने देश में प्रत्युत प्रदेश में भी स्त्री शिक्षा की स्थिति ठीक नहीं है। वह अनेक समस्याओं में उलझी हुई है। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उद्देश्यों के संबंध में विवाद बहुत समय से चला आ रहा है। एक ओर वे लोग हैं जो स्त्री शिक्षा को जीवन के सत्य और शाश्वत मूल्यों से सम्बन्ध रखना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में "शिक्षा" - "शिक्षा के लिए" होनी चाहिए। व्यक्तित्व का विकास ही उसका चरम लक्ष्य है। जीवन की भौतिक उपयोगिताओं एवं यथार्थता से स्त्री शिक्षा का, उनकी दृष्टि में, कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। दूसरी ओर वे लोग हैं जो स्त्री शिक्षा को या यों कहा जाए कि सम्पूर्ण शिक्षा को जीवन की वास्तविकता और यथार्थता से सम्बन्ध रखना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री शिक्षा केवल शिक्षा के लिए नहीं, केवल व्यक्तित्व के चरम विकास के लिए नहीं बल्कि जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्यों को लेकर चलनी चाहिए। दूसरे शब्दों में स्त्री शिक्षा का जीवन के उद्योग धन्धों और रोजगारों से गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

इसी प्रकार स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में भी अनेक विवाद हैं। बहुधा यह सुनने में आता है कि सामान्य रूप से शिक्षा का, जिसमें उच्च शिक्षा भी सम्मिलित है, जीवन से सम्बन्ध नहीं है। वह जीवन की आवश्यकता के सन्दर्भ में अप्रासंगिक है। उसमें बहुत सा ऐसा तत्व है जो आधुनिक नहीं है। उसका मूल आधार जब भी गुलामी के समय में निर्धारित संकल्पनाओं पर निर्भर है। अभी हाल में स्त्री शिक्षा का प्रथम डिग्री को अधिक व्यापक पाठ्यक्रम पर आधारित करने का प्रयास विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत कुछ फाउण्डेशन कोर्स होंगे, कुछ डिसिप्लिनपरक होंगे, कुछ व्यावसायिक एवं कार्योन्मुख होंगे और कुछ विस्तार सेवा और समाजसेवा से सम्बन्धित होंगे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इन चार स्तम्भों पर आधारित पाठ्यक्रम के विभिन्न पक्ष अत्यन्त विवादग्रस्त हैं।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में एक निष्क्रियता सी व्याप्त है और तीन शिक्षण-विधियाँ विशेष रूप से प्रयोग में लाई जाती हैं जैसे - व्याख्यान विधि, पाठ्य पुस्तक के माध्यम से शिक्षा देने की विधि और नोट्स लिखाने की विधि। इस प्रकार की स्थिति भी विदेशी शासन की देन है और जीवन से असम्बद्धता

इसका मूल कारण है। स्त्री शिक्षण विधि की कसौटी वह है, जो युवकों में अपना भावी जीवन विवेकपूर्ण चुनने की क्षमता उत्पन्न करे।

शिक्षिकाओं की समस्या अलग ही है सरकारी नियंत्रण बढ़ने के साथ-साथ दायित्वहीनता बढ़ती जा रही है और परिणामतः शिक्षा का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। महिला अध्यापिकाओं का काफी अभाव है।

उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों का नितान्त अभाव है। विभिन्न विषयों में संदर्भ ग्रन्थ प्रायः शून्य है। इसी से सम्बद्ध प्रश्न भाषा के विकास का भी है। यह बारम्बार निर्णय लिया जा चुका है कि प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जायेगी। किन्तु फिर भी कुछ लोग इस विसंगति में पड़े हुए हैं कि स्त्री-शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए। अंग्रेजी के प्रति मोह भी पुरानी गुलामी का द्योतक है। यह बात समझने में कठिनाई न होनी चाहिए कि जब प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जायेगी तो ऊपर की कक्षाओं में किसी अन्य भाषा का प्रयोग नहीं हो सकता। अंग्रेजी के पक्ष में तर्क अन्तर्विश्वविद्यालयी ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान के आधार पर दिया जाता है। इस समस्या का समाधान अंग्रेजी का प्रयोग नहीं है, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि तकनीकी शब्दावली भारतीय भाषाओं को आधार मानकर एक रूप कर ली जाए और सामान्य आदान-प्रदान के लिए हिन्दी का प्रयोग किया जाए। अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान - विज्ञान के आदान-प्रदान के लिए न्यूनतम अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, जापानी, रुसी आदि भाषाएं सीखी जाएं, मातृभाषा के रूप में नहीं बल्कि एक विदेशी भाषा के रूप में और वह भी अत्यन्त सीमित अर्थों और क्षेत्रों में।
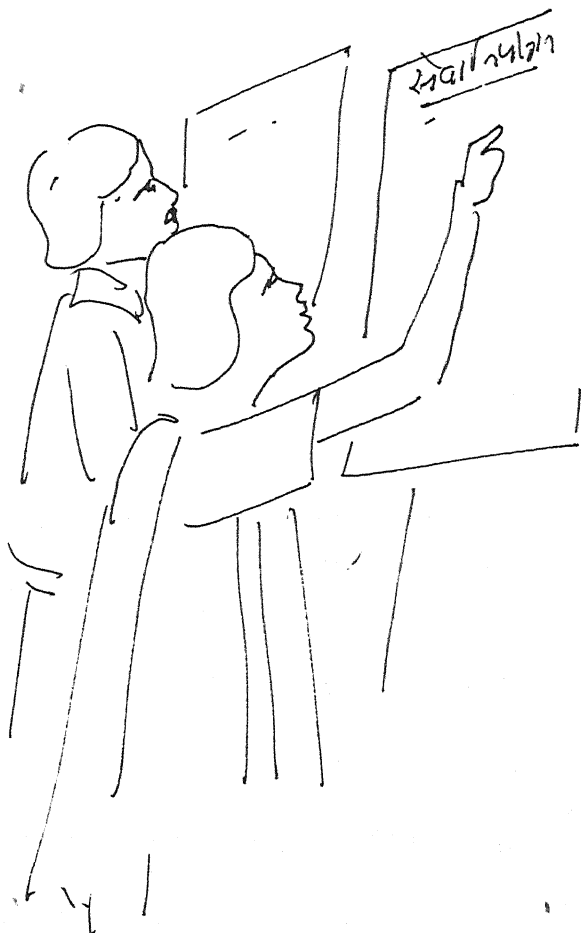
शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा की प्रणाली भी गम्भीर विवाद का विषय है। वाह्य और आन्तरिक द्वन्द्व का प्रश्न बहुत पुराना है। अनुचित साधनों का प्रयोग एक व्यापक समस्या है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा सम्बन्धी सुधार के लिए अनेक प्रयास किए हैं जैसे आतरिक मूल्यांकन पर आधारित सिमेस्टर सिस्टम, क्रेडिट सिस्टम, ग्रेडिंग सिस्टम, प्रश्न बैंक आदि इन सभी प्रयासों की उपयोगिता अत्यन्त विवादग्रस्त है।

तीन प्रश्न और ऐसे हैं जिनके कारण शिक्षा की जटिलता बढ़ती ही जा रही है पहता तो यह है कि शिक्षा सर्व सुलभ बनाई जाय या कुछ सीमित लोगों की ही, और उतने ही लोग शिक्षा में शिक्षित किए जायें जितने लोगों और जितने प्रकार के लोगों की आवश्यकता देश को हो पर प्रत्येक नागरिक शिक्षित हों, यह मूल बात है। स्कूली शिक्षा अपने देश में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती रही है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में स्कूली शिक्षा से तात्पर्य मैट्रीकुलेशन से था जो वर्तमान हाईस्कूल के समकक्ष समझी जाती थी। वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षाएं उच्च शिक्षा के अन्तर्गत आती थीं और वे शिक्षा में प्रवेश पाने के लिए तैयारी की दृष्टि से मध्यस्थ कक्षाएं मानी।

शोधकर्त्री की अपनी जानकारी में अभी तक इस प्रकार का कार्य नहीं हुआ है इसलिए प्रस्तुत विषय पर शोध अध्ययन और शिक्षा के विकास के संदर्भ में एक मौलिक और महत्वपूर्ण योगदान होगा जो पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के विकास पर स्वतंत्रता के बाद 1990 तक का पूर्ण स्वरूप का विचार होगा।

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे -

1. उन तथ्यों और घटनाओं की खोज करना जिनसे स्त्री शिक्षा के उद्भव और विकास का सही निरुपण हो सके।

2. सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का बोध होने पर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं का निरुपण करना।

3. स्त्री शिक्षा के प्रमुख समस्याओं का शोध के आधार पर उचित समाधान प्रस्तुत कराना व प्रयासों के स्रोत व स्वरूप की व्यापक जानकारी प्राप्त करना है।

समस्या का कथन एवं विषय का परिसीमन :

अध्ययन की समस्या का उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है जिसके अनुसार प्रस्तुत अध्ययन का विषय उ0 प्र0 स्त्री का विकास चुना गया है और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उसकी समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन ही शोधकर्त्री के अध्ययन की मुख्य समस्या है। यह विषय अत्यन्त व्यापक है इसलिए उसे उ0 प्र0 की सीमाओं में ही सीमित रखा गया है। साथ ही सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को न लेकर केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की अवधि को अध्ययन के अन्तर्गत किया गया है।

अध्ययन के शीर्षक में प्रयुक्त संकल्पनाओं एवं प्रत्ययों का स्पष्टीकरण :

किसी विषय का अध्ययन गहराई से करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मुख्य संकल्पनाओं को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया जाय। शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसमें विद्यार्थी स्कूली शिक्षा समाप्त करने के पश्चात प्रवेश पाता है। स्कूली शिक्षा अपने देश में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती जा रही है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में स्कूली शिक्षा से तात्पर्य मैट्रीकुलेशन से था जो वर्तमान हाईस्कूल के समकक्ष समझी जाती थी। वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षाएं स्त्री शिक्षा के अन्तर्गत

आती थीं और वे स्त्री शिक्षा में प्रवेश पाने के लिए तैयारी की दृष्टि से मध्यस्थ कक्षाएं मानी जाती थीं। 1917 के सैडलर कमीशन अथवा कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की रिपोर्ट के पश्चात् इण्टरमीडिएट कक्षाएं स्त्री शिक्षा की कक्षाओं से अलग कर दी गई है और इस प्रकार से स्कूली शिक्षा का अंग बन गई। 1953 में मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट के पश्चात् स्कूली दस के बजाय ग्यारह वर्ष की दी गई। केवल उत्तर प्रदेश में वह बारह वर्ष की पूर्ववत रही। अन्य प्रदेशों में इण्टरमीडिएट का एक वर्ष पी० यू० सी० के नाम से उच्च शिक्षा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया और उसे तैयारी का एक वर्ष माना गया। इस प्रकार स्त्री शिक्षा का प्रारम्भ ग्यारह वर्ष की स्कूली शिक्षा का एक वर्ष पी० यू० सी० के पश्चात् होने लगा और उत्तर प्रदेश में हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट कक्षाओं के बाद उच्च शिक्षा का प्रारम्भ स्वीकार किया।

शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया है, इस अध्ययन में ऐतिहासिक शोध विधि तथा आदर्शक मूलक विधि को वरीयता दी गई है क्योंकि यह वर्तमान क्रिया की सार्थकता सिद्ध करने अथ्वा वर्तमान क्रिया के सुधार के लिए वर्तमान दशा से सम्बन्धित आंकड़े एकत्र करने की अति उत्तम विधि है। सर्वेक्षण विधि का उद्देश्य अतीत में सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों, समस्याओं व स्थितियों के विषय में व्यापक तथा विस्तृत आंकड़े संकलित करना है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण अनुसंधान, सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं का अध्ययन, उसमें से चयन किये गए प्रतिदर्शी के आधार पर, इस आशय से किया जाता है, ताकि उनमें व्याप्त सामाजिक मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, वितरणों तथा पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।

परिकल्पना का निर्माण :

समस्या चयन के बाद, शोधकर्त्री का महत्वपूर्ण कार्य उस परिकलपना का निर्माण करना होता है, जिस पर अन्वेषण करने जा रहा है। परिकल्पना एक अनुमति स्तर होता है, जिसकी विश्वसनीयता

को देखा जा सकता है। किसी भी लक्ष्य को पूर्ण प्राप्त करने के लिए, इसे किसी भी पूर्वानुमानित प्रचलित विचार के आधार पर ही आगे बढ़ाया जा सकता है। परिकल्पना ही सम्पूर्ण अध्ययन का आधार होता है।

शोध परिकल्पना :

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 का क्रियान्वयन अत्यन्त धीमा हो रहा है।
2. समय-समय पर राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका है।
3. सुविधाओं में बालक, बालिकाओं के मध्य विशेष भिन्नता रही है।
4. समाज के महिला वर्ग के स्तर को उठाने में, आशातीत सफलता नहीं मिल सकी है।
5. महिला वर्ग के शैक्षिक स्तर को उठाने में शैक्षिक संस्थाओं, अधिकारियों तथा संरक्षकों का योगदान सराहनीय नहीं है।

न्यादर्श तथा आंकड़ों का संकलन :

अनुसंधान की समस्या के निचित एवं परिकल्पना निर्माण के बाद यह समस्या आती है कि अपनी परिकल्पना के परीक्षण के लिए, आंकड़ों का संग्रह किस प्रकार से तथा किन उपकरणों के द्वारा किया जाय क्योंकि परिकल्पना की प्रकृति के अनुसार उपकरणों का निश्चित करना आवश्यक होता है। प्रत्येक उपकरण किसी परिस्थिति के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कभी-कभी किसी एक समस्या के समाधान के लिए, आंकड़ें एकत्रित करने में भी अनेक उपकरणों का प्रयोग करना पड़ता है, अतः

अनुसंधानकत्री को उपकरणों व विधियों का व्यापक ज्ञान होना आवश्यक है तथा किसी प्रकार के आंकड़ों के लिए किस प्रकार का उपकरण प्रयोग किया जाय जिससे उसकी विशेषता विश्वसीयता वेधता आदि बनी रहे साथ ही उसे इन उपकरणों के बनाने, प्रयोग करने तथा प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने का भी ज्ञान होना चाहिए।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

****

पिछले अध्याय में यह कहा जा चुका है कि शैक्षिकव आर्थिक अभाव दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। स्त्री जाति को पूर्ण शिक्षा के अभाव में आर्थिक अभाव का भी सामना करना पड़ा इस प्रकार समाज का यह अंग हर तरह से इतना कमजोर हो गया कि उसके उत्थान के बिना पूर्ण समाज का कल्याण होना असम्भव सा मालूम होने लगा। प्राचीन युग में भी इस वर्ग को शिक्षा से वंचित रखा गया। मुस्लिम युग तथा ब्रिटिश युग में इन्हें कहीं भी किसी प्रकार से प्रधानता नहीं दी गयी। जो कुछ भी थोड़ा

बहुत उनके सामाजिक उत्थान के लिए किया गया वह देश के स्वतंत्रता आंदोलन के समय में ही किया गया।

भारतीय संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जन जाति के लिए हरिजन सहायक विभागकी स्थापना सन् ।948-।949 में की गई। इस विभाग के अतिरिक्त एक अलग विभाग ।940-4। में रिलेक्शेशन विभाग था। ।95। तक इन दोनों विभागों का एकीकरण करके हरिजन कल्याण विभाग की स्थापना की गयी। सन् ।955 में समाज कल्याण विभाग के नाम से एक विभाग स्थापित किया गया जिससे स्त्री शिक्षा का प्रचार व प्रसार हुआ।
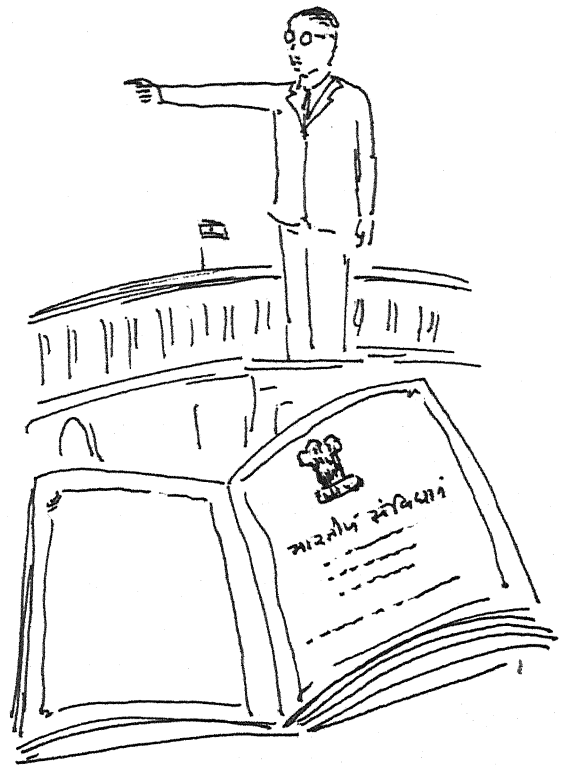
अवलोकन की आवश्यकता व शोध प्रबन्ध की संक्षिप्त व्याख्या :

उत्तर प्रदेश में स्त्रियों, अन्य पिछड़े वर्गों के सर्वांगीण विकास के हेतु पांचवी पंचवर्षीय योजना में सबसे पहले कार्य किया गया जिसमें ।974 से ।979 तक के लिए 2500 लाख रूपये निर्धारित किए गए थे। यह सर्वविदित है कि हमारे देश में सदियों से प्रचलित दोषपूर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप समाज का एक वर्ग पिछड़ता चला गया। इस कुप्रथा से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले वर्ग में वह स्त्री जाति आती है। यह सदैव ही उपेक्षित रही है परन्तु विदेशी शासनकाल में इनकी अत्यधिक उपेक्षा की गई है। इसी कारण निर्धनता के साथ शिक्षा के अभाव के कारण सामाजिक स्थिति भी गिरती गई और मानवता के प्रतिकूल इन्हें समाज का एक अछूता अंग माना जाने लगा।

उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। उसी अनुपात में इस प्रदेश में स्त्री शिक्षा की संख्या और प्रदेशों से कम है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की कुल जनसंख्या 11.98 करोड़ थी जिसमें स्त्री शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम था। इन सभी कमजोर वर्गों की सम्भावित जनसंख्या प्रदेश की कुल जनसंख्या की 52 प्रतिशत है। अतः देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु इन कमजोर वर्ग का सर्वांगीण विकास कर उन्हें अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाना नितान्त आवश्यक है। वास्तव में देखा जाय तो इस प्रदेश में 66 अनुसूचित तथा 70 विमुक्त जातियाँ हैं। जिनमें से 31 स्थिर हैं एवं 39 अस्थिर हैं। 58 पिछड़ी जातियाँ हैं जिनमें 35 हिन्दू तथा 21 मुस्लिम हैं, अनुसूचित जातियों की साक्षरता मात्र 14.96 प्रतिशत है तथा 75 प्रतिशत परिवार गरीबी की रेखा के नीचे निवास करते हैं। 1967 में भारत सरकार द्वारा प्रदेश की 5 जातियाँ थारु, भोकसा, भोटिया, राजी (बनरावत) तथा जौन अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में घोषित की गई थी तथा उनके कल्याणार्थ भी अनुसूचित जातियों की भाँति अनेक योजनायें चलाई गयीं थीं।

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा विमुक्त जातियों के उत्थान के लिए जो प्रयास किए गए हैं तथा उनमें जो बाधाएं अथवा रुकावटें आई हैं अथवा समस्याएं पैदा हुई है उनके समाधान के लिए इस शोध पत्र में जिसका शीर्षक है "स्वतंत्रता के उपरान्त स्त्री जाति का राजकीय नीतियों के संदर्भ में शिक्षा विकास" का प्रयास निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया है।

1. उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त 1988 में विशेषकर 1975-1976 के पश्चात् स्त्री जाति तथा अन्य दुर्बल वर्ग के शिक्षा तथा कल्याणकारी सम्बन्धी राजकीय नीतियों का अध्ययन।

2. स्त्री शिक्षा तथा अन्य दुर्बल वर्ग के शिक्षण हेतु बालक एवं बालिकाओं के शिक्षा के स्तर की समीक्षा।

3. उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा व्यवस्था का विवेचन।

4. उपलब्धि की प्राप्ति में बाधक समस्याओं की विवेचना एवं उनके निवारण के उपाय।

समस्या का परिसीमन :

1. इस अध्ययन का विशेष सम्बन्ध पूर्वी उत्तर प्रदेश की स्त्री शिक्षा एवं दुर्बल वर्ग की शिक्षा तथा कल्याणकारी विषयों से है।
2. स्वतंत्रता के उपरान्त 1948 से विशेषकर 1975-76 के पश्चात् उपरोक्त जनमानसों की शैक्षिक तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं का राजकीय नीतियों के संदर्भ में विशेष रूप से अध्ययन किया गया है।
3. धन व समय की कमी के कारण विषय सम्बन्धी प्रगति की समीक्षा प्रकाशित आंकड़ों के आधार पर की गयी है। प्रश्नावली के आधार तथा पत्राचार द्वारा व व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा भी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से जहाँ इन जातियों का बाहुल्य है वह आंकड़े एकत्रित किए गए हैं जो योजनाओं की प्रगति में बाधक सिद्ध हुए हैं।

परिकल्पना :

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना निम्नलिखित है -

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 का क्रियान्वयन अत्यन्त धीमा रहा है।
2. समय-समय पर राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है।
3. सुविधाओं में बालक-बालिकाओं के मध्य विशेष भिन्नता रही है।
4. समाज के निर्बल वर्ग और मध्यम वर्ग की स्त्री शिक्षा के स्तर को उठाने में आशातीत सफलता नहीं मिली है।

5. निर्बल वर्ग के शैक्षिक स्तर को उठाने में शैक्षिक संस्थाओं अधिकारियों तथा संरक्षकों का योगदान सराहनीय नहीं रहे हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया है जिसमें ऐतिहासिक शोध विधि तथा आदर्शक मूलक विधि को वरीयता दी गई है। आंकड़ों का शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित बुलेटिन से मुख्य रूप से किया गया है तथा उन समस्याओं का जो कि स्त्री शिक्षा की प्रगति में बाधक रही है, उनका अध्ययन प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार द्वारा भी किया गया है। ऐसे क्षेत्रों का चुनाव जिनसे ये आंकड़े एकत्रित किए गए हैं वे रेंडम सेम्पलिंग द्वारा किये गए हैं।

बिना हिचकिचाहट के ये कहा जा सकता है कि इस विषय पर बहुत कार्य अभी तक नहीं हुआ है। प्रकाशित पुस्तकों का बहुत अभाव है तथा शोध कार्यकर्ताओं ने इस विषय को अभी तक पूर्ण रूप से नहीं छुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-पत्र अपनी तरह का प्रथम प्रयास है जिसमें प्रकाशित आंकड़े उ0 प्र0 के शिक्षा विभाग द्वारा विभागीय बुलेटिन से एकत्रित किए गए हैं। इन बुलेटिनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में सन् 1975-76 से स्त्री शिक्षा के उत्थान के लिए योजनाबद्ध कार्य किया गया है जिसमें निम्नलिखित योजनाएं विशेष रूप से वर्णनीय हैं -

1. शैक्षिक योजनाएं
2. आर्थिक योजनाएं
3. स्वास्थ्य आवास एवं अन्य योजनाएं

स्त्री शिक्षा के उत्थान के लिए शासन ने आय के आधार पर शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए योजनाएं बनाई थीं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को उनके माता-पिता तथा अभिभावकों की आय तथा उनके स्वयं की योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति तथा पुस्तकीय सहायता दी जाती थी तथा स्त्रियों, महिलाओं और बालिका विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों को जो क्षति होती थी उसकी पूर्ति की जाती थी। विभागीय शिक्षा संबंधी योजनाओं को निम्नलिखित मुख्य भागों में बाँटा गया है -

1. पूर्व दशम, दशमोत्तर, कक्षाओं की शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ

2. दशमोत्तर कक्षाओं में शिक्षा सम्बन्धी योजना।

3. प्राविधिक शिक्षा सम्बन्धी योजना।

4. स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा संबंधी कार्य।

पूर्व दशम कक्षाओं की शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं में छात्रवृत्ति तथा अनावर्तीय सहायता मेधावी छात्रों को विशेष छात्रवृत्ति, निःशुल्क शिक्षा, स्थानीय निकायों में शुल्क की क्षतिपूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। पिछड़ी जातियों की छात्रवृत्तियाँ आय के आधार पर दी जाती थी। बालिकाओं के प्रथम बार अनुत्तीर्ण दशमोत्तर कक्षाओं के छात्राओं को शुल्क से मुक्ति रहती थी।

प्राविधिक शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं में चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग संस्थाओं में पढ़ने वाले छात्राओं को अनावर्तीय सहायता दी जाती थी। उत्तर प्रदेश में कुछ विभागीय प्राविधिक संस्थाएँ भी हैं जिनमें छात्राओं को विशेष रुप से प्रवेश दिया जाता था। विभागीय प्राविधिक संस्थाओं में तीन औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र बख्शी का तालाब, लखनऊ, लाल डिग्गी पार्क, गोरखपुर, पाइन्स नैनीताल एवं गोविन्द बल्लभ पन्त पालीटेक्निक, आर्यनगर सेटलमेंट, लखनऊ विशेष उल्लेखनीय है । जहाँ इन छात्रों को विभिन्न व्यवसायों में सर्टीफिकेट कोर्स तथा पालीटेक्निक में त्रिवर्षीय डिप्लोमा कोर्स था। प्रशिक्षण दिया जाता था। बक्शी का तालाब लखनऊ में 13 व्यवसाय, गोरखपुर में 4 व्यवसाय तथा नैनीताल के केन्द्रों में एक वर्षीय आशुलिपिक हिन्दी का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

इन छात्राओं को छात्रावास की नि:शुल्क सुविधा उपलब्ध थी। औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों में सभी दैनिक छात्राओं का अनिवार्य रूप से रूपये 37·50 छात्रावासीय छात्रों को विशेष रूप से रूपये 45 प्रति माह की दर से छात्रवृत्ति प्रदान की जाती थी। छात्रवृत्ति की सुविधाएं पालीटेक्निक में भी उन छात्रों को दी जाती ी, जिनके अभिभावकों की वार्षिक आय केवल 2400 रूपये तक थी। प्रदेश सरकार की सहायता के अतिरिक्त अनुसूचित जाति के छात्रों को छात्रवृत्ति की सुविधाएं भारत सरकार द्वारा भी दी जाती थी। ये छात्रवृत्तियाँ समय-समय पर घटती-बढ़ती रही हैं।

स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अनुसूचित जाति के बच्चों को, जो शिक्षा प्रदान की जाती थी, उस सुविधा के बदले में सरकार ऐसी संस्थाओं को धन उपलब्ध कराती थी। स्वैच्छिक संस्थाओं के अन्तर्गत छात्रावास लड़कों तथा लड़कियों के लिए प्राइमरी पाठशालाएं एवं पुस्तकालय चलाये जाते थे। इन स्वैच्छिक संस्थाओं का सम्पूर्ण व्यय भार-विभाग की ओर से अनुदान के रुप में दिया जाता था, ये सब संस्थायें पंजीकृत थी और उन पर सरकारी नियंत्रण था।

यह पहले कहा जा चुका है कि छात्राओं के लिए छात्रावास की सुविधाएं प्रदान की जाती थी, छात्राओं के लिए छात्रावासों के निर्माण का प्राविधान लखनऊ, कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, मेरठ और वाराणसी में था। इसी प्रकार छात्रों के लिए भी छात्रावास की पूरी सुविधाएं थी।

महिलाओं के लिए न्यायिक सेवाओं हेतु पूर्ण प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गयी थी, जिसका केन्द्र प्रथम बार इलाहाबाद में रखा गया था। इस तरह की योजना उन अभ्यर्थियों के लिए भी थी जो इन्जीनियरिंग कक्षाओं में प्रवेश के पूर्व कोचिंग करना चाहती थी। डाक्टरी कोर्स में प्रवेश प्राप्त करने के लिए जो अभ्यर्थी कोचिंग कोर्स करना चाहते थे अथवा जो अभ्यर्थी राज्य सेवाओं की परीक्षा के पूर्व कोचिंग करना चाहती थी उन्हें भी कोचिंग की पूरी सुविधा दी जाती थी। स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा शत प्रतिशत अनुदान पर तीन आश्रम पद्धति विद्यालय संचालित किए जा रहे थे। आश्रम पद्धति विद्यालय

सहारनपुर, विकास विद्यालय, ईश्वर शरण आश्रम, इलाहाबाद, प्रगति आश्रम वाला गंज, लखनऊ विशेष उल्लेखनीय हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त वित्त वर्षीय 1989-90 पर्वतीय क्षेत्र के चार जनपद देहरादून, श्रीनगर (पौड़ी गढ़वाल) नैनीताल तथा अल्मोड़ा में एक-एक राजकीय आश्रम पद्धति विद्यालय कक्षा 12 स्तर तक बालिकाओं के लिए खोलने की योजना बन चुकी थी। इस प्रकार सन् 1974-75 से 1989-90 तक प्रदेशीय सरकार तथा भारत सरकार ने महिलाओ की शैक्षिक योजनाओं पर करोड़ों रूपये का व्यय किया जिसमें प्राविधिक शिक्षा, इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, औद्योगिक, पूर्वदशम् तथा दशमोत्तर शिक्षा, निःशुल्क छात्रावास आदि सभी सम्मिलित है, परन्तु इन सुविधाओं का लाभ मुश्किल से उत्तर प्रदेश के 5 से 10 प्रतिशत छात्र ही लाभ उठा पाये।
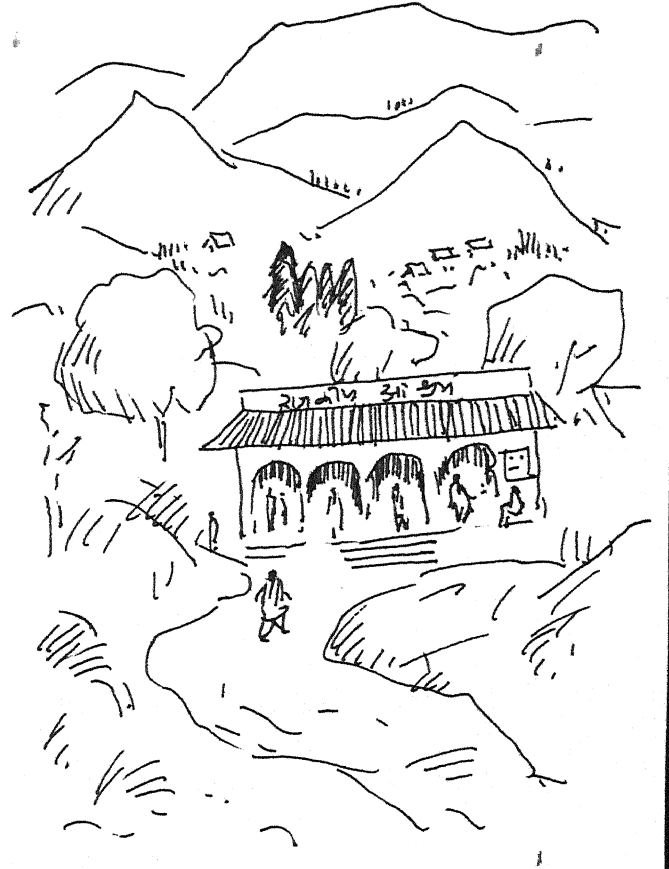
समाज की निर्बल जाति के लोगों के आर्थिक विकास वस्तुतः उद्योग, व्यापार, व्यवसाय को समुचित रूप से आरम्भ करने अथवा विकसित करने के लिए उत्तर प्रदेश में वित्त एवं विकास निगम लिमिटेड की स्थापना भी की थी। इस निगम द्वारा निर्बल वर्ग के लोगों को उद्योग व्यापार तथा व्यवसाय चलने अथवा विकसित करने हेतु या तो सीधे निगम से धन प्राप्त कराया जाता है अथवा बैंकों से धन प्राप्त कराने में सहायता दी जाती है । इस निगम द्वारा स्टेट बैंक आफ इण्डिया, पंजाब नेशनल बैंक व इलाहाबाद बैंक के सहयोग से काफी उद्यमियों को उद्योग धन्धे स्थापित करने हेतु आर्थिक सहायता दी जा चुकी है ।

मुसहर जातियों के विकास हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विशेष योजनाएं चलाई गई हैं। ये

जाति अधिकांशतः गाजीपुर, जौनपुर, बलिया, सुल्तानपुर तथा वाराणसी आदि जिलों में निवास करते हैं। उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति दयनीय है। उनके उत्थान एवं पुनर्वासन हेतु दुधारु जानवर उपलब्ध कराने की एक विशेष योजना चलाई गई है। ऐसे जानवर खरीदने के लिए उन्हें 1500 रूपये का अनुदान दिया जाता है। उनमें जागृति लाने के लिए एक आश्रम पद्धति विद्यालय भी स्थापित किया गया है जहाँ उनके बालकों को अलग करके रखा जाता है और उन्हें शिक्षा के अतिरिक्त वस्त्र, भोजन तथा भौतिक विकास आदि सम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया जाता है।

हरिजन एवं निर्बल वर्ग के व्यक्तियों को आवासी सुविधा प्रदान करने के लिए शासन द्वारा 1976-77 में हरिजन एवं निर्बल वर्ग आवास निगम लि0 की स्थापना की गई थी।

उपरोक्त जाति के हायर परचेज पद्धति के आधार पर दूकानों के निर्माण की योजना चलाई गई है। इसी प्रकार ऐसे व्यक्तियों के पुत्रियों की शादी हेतु भी सरकार द्वारा सहायता दी जाती है। विमुक्त जाति के व्यक्तियों के गृहों की मरम्मत एवं विस्तार हेतु अनुदान दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश के 1992-93 के बजट में कल्याण विभाग की बजट माँगे पेश करते हुए समाज कल्याण मन्त्री ने घोषणा की कि महिला उद्यमियों को 2.00 लाख रुपये तक के उद्योग लगाने हेतु मार्जिन मनी कर्जा देने तथा उन्हें विपणन में सहायता करने का राज्य सरकार ने निर्णय लिया है। समेलित बाल विकास परियोजना के अन्तर्गत वर्ष 1992-93 में इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर तथा शाहजहाँपुर में पर्याप्त मात्रा में पोषाहार के भण्डारण की व्यवस्था सुनिश्चित की जायेगी, जिसके लिए 46.07 करोड़ रूपये के बजट माँगें सदन में प्रस्तुत की गई। अनुसूचित जाति, जनजाति तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिए तथा 6 वर्ष की आयु के बच्चों के सर्वांगीण विकास तथा गर्भवती तथा धात्री महिलाओं के समुचित पोषण एवं प्रतिरक्षण के उद्देश्य से 313 विकासखण्डों में समेलित बाल विकास योजना का क्रियान्वयन करा दिया है। समेलित बाल विकास के अन्तर्गत 260 आँगनवाड़ी केन्द्रों के पक्के भवनों का निर्माण कराया गया है तथा आँठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत प्रदेश के समस्त आँगनवाड़ी केन्द्रों के भवनों को

पक्का करा दिया जायेगा। 18 से 11 वर्ष तक की बालिकाओं के अनुपूरक पोषाहार, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा रोजगार एवं आय सृजन के अवसर प्रदान किए जाने के उद्देश्य से वर्ष 1992-93 में 77 विकास खण्डों में गर्ल टू गर्ल एप्रोच एवं बालिका मण्डल कार्यक्रमों को आरम्भ किया गया है। श्रमजीवी महिलाओं के लिए लखनऊ, बनारस, आगरा, कानपुर, गोरखपुर, फैजाबाद, हल्द्वानी, अल्मोड़ा एवं देहरादून जनपदों के छात्रावास का निर्माण कराया गया है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के उत्पीड़न पर प्रभावी नियंत्रण एवं नियमित अनुश्रमन के लिए सरकार ने अत्याचार निवारण प्रकोष्ठ की स्थापना की है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का विकास किसी प्रमुख योजनाबद्ध क्रम का रुप नहीं है। उसमें विभिन्न सरकारी प्रयास और स्वयंसेवी संस्थाएं अपना योगदान देती रहीं पर आशातीत प्रगति इसमें

नहीं दिखायी दी। इस विषय पर बहुत से शोध प्रबन्ध भी प्रस्तुत किये गए पर उनमें मौलिक समस्याओं पर ध्यान न देकर सरकारी आंकड़ों के प्रति ही अपने विचार प्रकट करते रहे। मेरी दृष्टि में गाँवों में जाकर स्त्रियों की दशा, उनकी कार्य प्रणाली और समस्याओं को जाकर यदि देखा जाय तो इस समस्या का सही जानकारी मिल सकती है। तभी हम वास्तविकता की पहचान कर सकते हैं।

शोध प्रबन्ध कुछ ऐसी मौलिक समस्याओं के निराकरण का रुप होती है जिससे आने वाली पीढ़ी भी कुछ सीख लेती है। यदि उन सुझावों की उपयोगिता समझी जाय तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्री शिक्षा का

विषय आशातीत रूप में विकसित न हो सके।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में इसी समस्या में एक ऐसी कड़ी है जो कुछ ऐसे आयामों पर नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। मुझे कुछ ऐसे शिक्षाविदों और गुरुजनों के विचार इस समस्या पर मिले जो प्रबंध में दिये गए हैं। अवश्य ही समस्या के निदान के लिए उपयोगी हुये। विभिन्न प्रदेशों में भी उनका निदान इसी प्रकार हो सकेगा परन्तु हमें स्वयं अग्रसर होकर अपना मार्ग प्रशस्त करना है। महिलायें अब अबला नहीं शक्ति की प्रतीक हैं। ऐसा विचार रखकर आगे बढ़ना होगा।

विवेचन एवं तुलना :

भारत में 1941 की जनगणना के आधार पर लगभग 30 लाख परिवार गरीबी की रेखा के नीचे निवास कर रहे थे। देश की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व0 श्रीमती इन्दिरा गाँधी की असीम प्रेरणा से 2 अक्टूबर, 1980 से महिलाओं के उत्थान हेतु स्पेशल कम्पोनेन्ट प्लान लागू किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक 387575 परिवार इस योजना से लाभान्वित हुए। वर्ष 1985-86 के लिए निगम द्वारा 50 हजार परिवारों का लख्य रखा गया था। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे सभी अनुसूचित जाति के व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय ग्रामीण क्षेत्र में रूपये 3500 तथा शहरी क्षेत्र में रुपयो 4300 से अधिक न हो पाता था।

उपलब्धि की प्राप्ति में बाधक समस्याओं का विवेचन करने से पता लगता है कि शैक्षिक योजनाओं के क्षेत्र में, शिक्षा के प्रति माता-पिता की उदासीनता बच्चों की लिखाई-पढ़ाई के प्रति लापरवाही, पढ़ाई-लिखाई के लिए उचित वातावरण की कमी पढ़ाई-लिखाई के प्रति सामाजिक निर्बल वर्ग की उपेक्षा तथा कक्षाओं में फेल हो जाने के पश्चात् दुबारा प्रवेश न पाने की इच्छा आदि बाधाएं हैं जो कि इस क्षेत्र की प्रगति न होने के कारणों में मुख्य है।

शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति की समस्याएं भी बाधक हैं। इनमें विशेष रूप से छात्रवृत्ति पाने

के लिए जो विधियाँ सरकार ने निर्धारित की है, उनमें भी छात्रों की काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता क्योंकि सरकार तथा स्कूल के प्रधानाचार्यों के बीच तालमेल नहीं है। दूसरे छात्रवृत्ति के धन में हेराफेरी, घोटाले आदि भी सरकार के सामने आये हैं जिनके कारण शैक्षिक योजनायें चल नहीं पा रही हैं। इस क्षेत्र में प्रशासन ने जो अन्य सुविधाएं प्रदान की हैं उनका भी छात्र उपयोग नहीं कर पाते हैं।

आर्थिक सुविधाओं के क्षेत्र में भी जो धन निर्बल वर्ग के लिए दिया जाता है चाहे वह घरेलू उद्योगों के लिए हो अथवा स्वास्थ्य व आवास के लिए हो उसे भी प्राप्त करने में पहले तो बहुत कठिनाई होती है। दौड़धूप करनी पड़ती है। अपने पास से पैसा खर्च करना पड़ता है। दूसरे यदि वह किसी प्रकार मिल भी जाता है तो उसका प्रयोग निर्बल वर्ग उस कार्य के लिए नहीं करता जिसके लिए वह धन दिया गया। सरकारी तंत्र की नीतियाँ भी बहुत स्पष्ट नहीं है जिससे हर स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

उपरोक्त बाधाओं के निराकरण के लिए यह आवश्यक है कि प्रसार तथा प्रचार की सेवाओं को अधिक महत्व दिया जाय और व्यक्तिगत रुप से निर्बल वर्ग के परिवारों के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाय और उन्हें शिक्षा के लाभों के प्रति उत्साहित किया जाय। बच्चों के पढ़ने के स्कूलों का फासला । कि0मी0 से कम रहना चाहिए जिससे बच्चे तथा अभिभावक सभी स्कूल से सीधा सम्पर्क स्थापित कर सके। जहाँ निर्बल वर्ग के व्यक्ति रहते हों वहाँ पढ़ाई-लिखाई का वातावरण तैयार किया जाय। छात्रवृत्ति तथा निःशुल्क पुस्तकों व कापियों की मिलने की सुविधाओं में जो कठिनाइयाँ आती है उन्हें दूर किया जाय।

इस कार्य के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिए। उन्हें बच्चों व माता-पिता की मनोवृत्ति बदलने में सहयोग देना चाहिए और बच्चों को स्कूल भेजने में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। छात्रवृत्ति की उपलब्धि के बारे में जहाँ कहीं भी कठिनाइयाँ आती हों चाहे वह प्रधानाचार्य के स्तर पर

हो, चाहे डाकखाने व बैंकों के स्तर पर हो, चाहे वह जिला अधिकारियों के स्तर पर हो, उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इन प्रयासों को स्वयंसेवी संस्थाए यदि ग्रामीण स्तर से लेकर जिला स्तर तक एक आन्दोलन के रूप में चलायें तो सफलता की अधिक सम्भावनायें हैं।
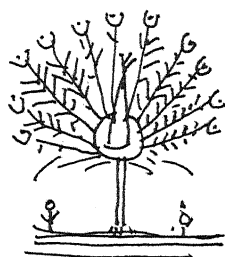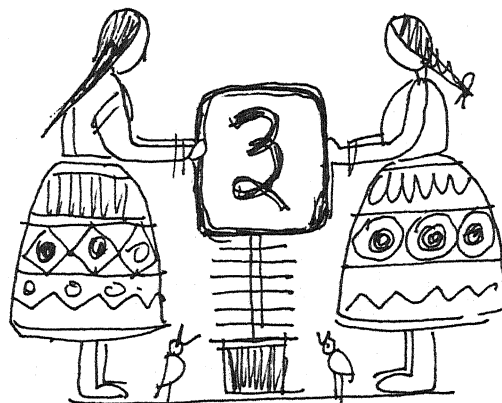
स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा का विकास

****

शिक्षाविदों ने शिक्षा विकास के इतिहास को निम्नलिखित युगों में बाँटा है :-

1. **प्राचीन काल में शिक्षा (1500 वर्ष पूर्व)**

   (अ) वैदिकयुगीन शिक्षा

   (ब) ब्राह्मणयुगीन शिक्षा

   (स) बौद्धयुगीन शिक्षा

2. **मुस्लिमयुगीन शिक्षा**

3. ब्रिटिशकालीन शिक्षा

प्राचीनकाल में स्त्री शिक्षा :

(अ) वैदिकयुगीन शिक्षा :

वर्तमान की जड़े अतीत में विद्यमान होती हैं। भारत का अतीत गौरवमय रहा है। इससे वर्तमान आलोकित हुआ है और भविष्य के प्रति आस्था उपजी है। प्राचीनकाल में आध्यात्मिकता से ही राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक धारायें प्रवाहित हुई।

भारतीय शिक्षा का आरम्भ, प्रकृति की गोद में, मानव की मूलभूत जिज्ञासा की शान्ति के लिए हुआ था। भारत में शिक्षा की तंत्र प्रणाली तथा संगठन का स्वरूप, प्रायः वैदिक युग से माना जाता है। भारत की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व के इतिहास में प्राचीनतम है। आज का भारत जो कुछ है वह अपनी गत 5000 वर्ष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक विरासत की देन है। प्राचीन भारत में समाज एवं राष्ट्र की परम्पराओं का संरक्षण विद्यालय में होता था। प्राचीन भारत की शिक्षा एवं समाज की जानकारी देने वाले ग्रन्थों में वेदों का स्थान पहला है। डा0 राधा कुमुद मुकर्जी ने कहा है कि "प्राचीनतम वैदिक काव्य के जन्म से ही हम भारतीय साहित्य को पूर्णरुपेण धर्म से प्रभावित देखते हैं।"

आज की तरह उस काल में ही घर बालक की प्रथम पाठशाला के रूप में ही कार्य करते थे। परिवार पालक प्राथमिक पाठशाला थी।

भारत का प्राचीन काल शैक्षिक दृष्टि से इतना महान तथा प्रबुद्ध रहा है कि विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। डा0 एफ0 डब्लू0 थामस ने लिखा है कि "भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ पर ज्ञान के प्रेम की परम्परा भारत से अधिक प्राचीन एवं शक्तिशाली हों।"

वैदिक-काल में शिक्षा के लिए विद्या, ज्ञान, प्रबोध तथा विनय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्राचीनकाल के ग्रन्थों में अशिक्षित मनुष्य को दिशाविहीन पशु कहा गया है। शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है। शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है। प्राचीनकाल में शिक्षा ज्ञान का तीसरा नेत्र माना जाता था। शिक्षा ज्ञान है और वह मनुष्य का तीसरा नेत्र है। ज्ञान तृतीय मनुष्यस्य नेत्र का अभिप्राय यह है कि ज्ञान के मनुष्य के अन्तःचक्षु खुल जाते हैं। उसे आध्यात्मिक एवं आलोकित प्रकाश मिलता है, जो जीवन का पाथेय है। प्राचीन शिक्षा परम्परा का आधार समाज-ऋण चुकाना था। गुरु समाज ऋण चुकाने के लिए अध्यापन कराते थे, उनका स्थान सर्वोच्च था।

(ब) ब्राह्मणयुगीन शिक्षा :

ब्राह्मणयुगीन शिक्षा व्यवस्था बहुत कुछ वैद्यकालीन शिक्षा का ही परिष्कृत तथा उन्नत रुप थी। इस युग में पुरोहितवाद बढ़ रहा है। साथ ही शिक्षा की संस्थाओं में अनेक स्वरूप विकसित होने लगे थे। उपनिषद, आरण्यक, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों की रचना इसी युग की देन हैं। वनों में प्रसिद्ध आश्रमों की स्थापना होने लगी थी। दर्शन की छः शाखाओं - सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, कर्म या पूर्व मीमांसा, वेदान्त या उत्तर मीमांसा आदि का विकास भी इस युग की देन है। सूद्र तथा स्त्रियों की शिक्षा कम होने लगी थी। ब्राह्मण युग की शिक्षा वैदिक युग के आधार पर चल रही थी। परन्तु उनके पालन में दृढ़ता तथा संकीर्णता आ गयी थी। इस युग में शिक्षा जीवन संघर्ष से जूझने के लिए दी जाती थी।

शिष्य गुरुकुल अथवा गुरुगृह में रहते थे और गुरु के संसर्ग में रहकर संस्कार अर्जित करते थे। शिक्षा प्राप्त करने के लिए शूद्रों पर अवश्य प्रतिबन्ध लगा था। वे सामाजिक कारणों से शिक्षा प्राप्त

करने के पात्र नहीं समझे जाते थे। इस युग में स्त्री शिक्षा की भी उपेक्षा की गई और उन पर और कई बन्धन लगा दिये गए थे। वैदिक युग में शिक्षा मौखिक रूप से होती थी। शिष्यों को मंत्र रटाये जाते थे और उनकी व्याख्या की जाती थी। ब्राह्मण युग तक लिखने की कला का विकास हो गया था और लिखने के साथ-साथ मौखिक कार्य पर अधिक बल दिया जाता था।
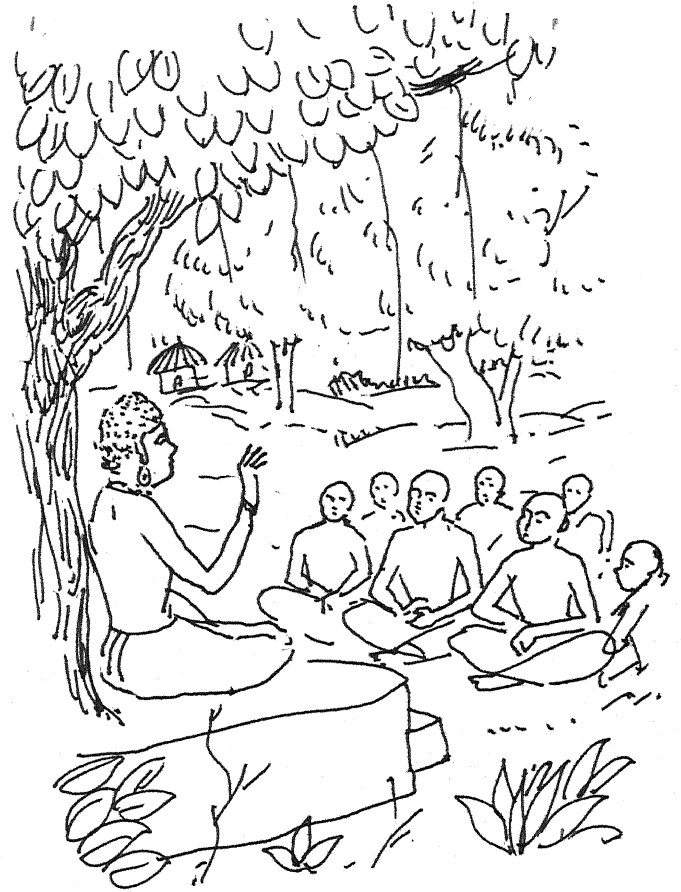
इस युग में वेदों के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती थी। व्याकरण, गणित, रेखागणित, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, कृषि सैनिक विज्ञान, न्याय दर्शन को पाठ्यक्रम में रख लिया था। उच्चारण, स्वर, व्यंजन आदि के शूद्र अभ्यास पर बल दिया जाता था। छात्रों को रस, अलंकार आदि को पढ़ाया जाता था।

(स) बौद्धयुगीन शिक्षा :

ब्राह्मण युग की शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन के साथ जुड़ गयी थी। कर्मकाण्ड बढ़ गया था। जनता परेशान हो गयी थी। चारो ओर दिशाहीनता का वातावरण था। ऐसी परिस्थितियों में बौद्ध धर्म का उद्‌भव, वैदिक कर्मकाण्डों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुकाबले में, बौद्ध विद्यापीठों की स्थापना होने लगी थी। पहले तो इन विद्यापीठों में बौद्धों को धार्मिक शिक्षा प्रदासु की जाती थी परन्तु कालान्तर में सभी वर्गों को इनमें शिक्षा दी जाने लगी। आर0 के0 मुकर्जी के अनुसार "उचित रुप से विचार किए जाने पर बौद्ध शिक्षा, प्राचीन हिन्दू या ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली का केवल एक रूप ही थी।

बौद्धयुगीन शिक्षा, ईसा पूर्व 5वीं सदी में अस्तित्व में आई। ब्राह्मणों ने ब्राह्मणयुगीन शिक्षा प्रणाली में जन-साधारण को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया था। फलतः बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव ने, जनता को शिक्षित करने, उन्हें धर्म का आचरण करने की स्वतंत्रता प्रदान थी। बुद्ध ने जीवन को व्यावहारिक स्वरूप दिया। इसीलिए व्यावहारिक धर्म और व्यावहारिक शिक्षा जन-साधारण के लिए उपलब्ध हुई।

बौद्ध शिक्षा, संघों में थी। आर0 के0 मुकर्जी ने लिखा है "बौद्ध शिक्षा पद्धति, प्रायः बौद्ध संघ की पद्धति है, जिस प्रकार वैदिक युग में यज्ञ संस्कृति के केन्द्र, उसी प्रकार बौद्ध युग में संघ शिक्षा और विद्या के केन्द्र थे। बौद्ध संसार मे अपने संघों से पृथक या स्वतंत्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। सब तरह की धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा ब्राह्मणों के हाथ में थी।

बौद्धयुगीन शिक्षा वस्तुतः उत्तर वैदिक काल तथा ब्राह्मण काल में दी जाने वाली शिक्षा के प्रति प्रतिक्रिया थी। बौद्ध युग में शिक्षा सामान्यजन के लिए हो गयी थी। इस युग में सामान्य शिक्षा संस्थाओं का गठन हुआ। इनमें प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था हुई। सभी व्यवहारिक विषयों की शिक्षा जो आज भी दी जाती है, बौद्ध युग की देन है। बुद्ध शिक्षक तथा समूह प्रणाली इसी व्यवस्था में विकसित हुई। शिक्षा संगठन औपचारिक रूप से संगठित किये जाने लगे। नालन्दा, वल्लभ्भी विश्वविद्यालयों का संगठन आज भी विश्वविद्यालयों के गठन एवं संरचनाओं को प्रभावित कर रहा है। उच्च शिक्षा के लिये न्यूनतम आयु नियमों और परीक्षा का आयोजन आज भी दिशा निर्देश दे रहा है ।

आरम्भ में तो इस युग की शिक्षा में स्त्रियों को हस्त एवं ललित कलाओं के साथ समादर दिया गया, परन्तु कालान्तर में समाज के उच्च वर्ग ने इनको हेय दृष्टि से देखना आरम्भ किया। संघ के रूप में विकसित हुए धर्म ने संस्थागत शिक्षा प्रणाली को विकसित किया और यही उनके पतन का कारण बनी। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि बुद्ध युग की शिक्षा प्रणाली ने नैतिकता अनुशासन के क्षेत्र में नवीन मापदण्ड स्थापित किये और स्त्री शिक्षा को महत्व दिया जाने लगा।

2. मध्यकाल में स्त्री शिक्षा :

हजरत मोहम्मद साहब के अनुसार "माँ-बाप के द्वारा बच्चों को दी जाने वाली सभी भेटों में, उदार शिक्षा को भेंट सर्वोत्तम है, विद्यार्थियों के कलम की स्याही शहीदों के खून से भी अधिक पवित्र है।"

मुस्लिम काल में शिक्षा का आधार धर्म था। मुस्लिम युग में अरब का प्रभाव, भारत की कला तथा संस्कृति पर पड़ा। राजनैतिक स्थिति पर भी वह प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। परिणामतः शिक्षा भी उसी प्रभाव से प्रभावित रही।

मुस्लिम युग की शिक्षा का आधार सामुदायिक था। इसलिए यह कहना कि मुस्लिम शासकों ने उदार रूप से शिक्षा का प्रसार किया, असंगत है। उन्होंने अपने उद्देश्य, स्वार्थों एवं लालसाओं की पूर्ति के लिए ही शिक्षा का प्रसार किया। स्त्री शिक्षा का विरोध हुआ।

इस युग में अरबी तथा फारसी की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। मुस्लिम युग में फारसी तथा अरबी को , शिक्षा का माध्यम बनाया गया। इस्लाम से प्रभावित होने के कारण इस पर धार्मिक प्रभाव था। हर मुसलमान धर्म तथा ज्ञान की खोज करने के लिए शिक्षा प्राप्त करता था। कुरान को कंठस्थ कराया जाता था। इस्लाम धर्म के अध्ययन पर बल दिया जाता था। मुस्लिमयुगीन शिक्षा ने व्यावहारिक तथा भौतिकता के दृष्टिकोण से ही शिक्षा का विकास किया। धार्मिक शिक्षा के साथ-2 इस बात पर भी बल दिया जाता था कि बालक पढ़-लिख कर अपनी रोजी कमाने योग्य हो जाय। इसलिए सैनिक शिक्षा, सर्वत्र कला, संगीतराशी, भवन निर्माण, युद्ध

सामग्री निर्माण आदि का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। इस प्रकार की शिक्षा उस्ताद लोग अपने शिष्यों को व्यक्तिगत स्तर पर देते थे। मुस्लिम शासकों ने अपने युग के इतिहास लिखवाकर इतिहास लेखन की कला को विकसित किया। बाबरनामा, अकबरनामा आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। अरबी-फारसी के संयोग से नई भाषा उर्दू की उत्पत्ति मुस्लिम युग की सबसे बड़ी देन है। आज उर्दू की जो स्थिति है , मुस्लिम युग के कारण ही है।

मुस्लिम युग में दी जाने वाली शिक्षा के उद्देश्य अनेक थे। इस शिक्षा प्रणाली के मुख्य उद्देश्य राजतंत्र के लिए योग्य कर्मचारियों का निर्माण करना था। शिक्षा का आधार धर्म था, इसलिए शिक्षा का उद्देश्य भी धर्म का प्रचार करना था। मकतबों का निर्माण मस्जिदों के साथ ही किया गया। मकतबों में कुरान-शरीफ का अध्ययन कराया जाता था। इस्लाम ने नैतिकता के अपने विशिष्ट मापदण्ड बनाये हैं और इनका प्रचार करना इस शिक्षा का ध्येय था। अनेक हिन्दुओं को मुस्लिम शिक्षा प्राप्त करने के बाद उच्च पदों पर रखा गया था। मुस्लिम युग में शिक्षा का उद्देश्य शासन को दृढ़ बनाना था। मुस्लिम शासकों का विचार था कि शिक्षा के अभाव में वे अपना शासन दृढ़ नहीं बना सकते। मुस्लिम और हिन्दू औरतों को भी इस युग में शिक्षा के कम अवसर मिले जिससे कोई ऐसी स्थिति सामने न आ सकी जिससे उसमें परिवर्तन दिखाई पड़े।

3. ब्रिटिशकालीन स्त्री शिक्षा :

ब्रिटिशकालीन में (सन् 1555 से 1852 तक) जिन महानुभावों ने शिक्षा के विकास में प्रमुख योगदान दिया, वे थे ईसाई मिशनरी, लार्ड मिन्टो, लार्ड मैकाले, लार्ड आक्लैण्ड, लार्ड हार्डिंग, वुड डिस्पैच आदि। सन् 1852 से 1986 तक हण्टर कमीशन व भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का विशेष योगदान रहा। सन् 1906 से 1947 तक जिन महानुभावों तथा समितियों के प्रतिवेदन ने शिक्षा की प्रगति में योगदान दिया, वे थे एनीबेसेन्ट, गोपाल कृष्ण गोखले, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1977, हर्टॉग समिति 1929, सप्रू समिति - 1934, एवान्ट प्रतिवेदन 1936-1937, बुनियादी शिक्षा 1937, सार्जेन्ट

प्रतिवेदन 1944, 1906 के उपरान्त वह काल था, जबकि देश में राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ चुका था तथा देश के नेता शिक्षा के विकास के लिए सब कुछ कुर्बानी करने के लिए तैयार थे।

स्वतंत्रोत्तर काल में शिक्षा :

1947 ईस्वी में भारत में स्वतंत्र सरकार ने देश का दायित्व सम्भाला। उस समय केन्द्र का शिक्षा विभाग, शिक्षा मन्त्रालय के रुप में गठित किया गया तथा राज्य सरकारों को शिक्षा का दायित्व सौंपा गया था। केन्द्र सरकार ने उच्च शिक्षा के समन्वय, प्रगति, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा आदि केन्द्र अपने हाथ में लिये थे। 1948 में डा0 राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग शिक्षा की नियुक्ति की गयी। आयोग ने शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत से सुझाव दिये। इसी प्रकार 1952-1953 में डा0 लक्ष्मी स्वामी मुदालिया की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन पर विचार करने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की गयी जिसमें महिला शिक्षा को महत्व मिला। स्वाधीन भारत की शिक्षा का आरम्भ, संविधान में की गयी घोषणाओं से मानना चाहिए। संविधान ने शिक्षा के सम्बन्ध में, जो विशेष बातें कही हैं, वह है संविधान की दूसरी सूची के सातवीं अनुसूची के ग्यारहवें अंकन पर स्पष्ट कहा है "शिक्षा विश्वविद्यालयों सहित सूची एक के 63, 64, 65 एवं 66वें अंकन एवं तीसरी सूची के 25वें अंकन के अनुसार राज्य का विषय है "स्त्री शिक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी पुरुषों की। संविधान की धारा 45 में कहा गया है कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के भीतर, राज्य अपने क्षेत्र के सभी बालकों को उस समय तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेते।
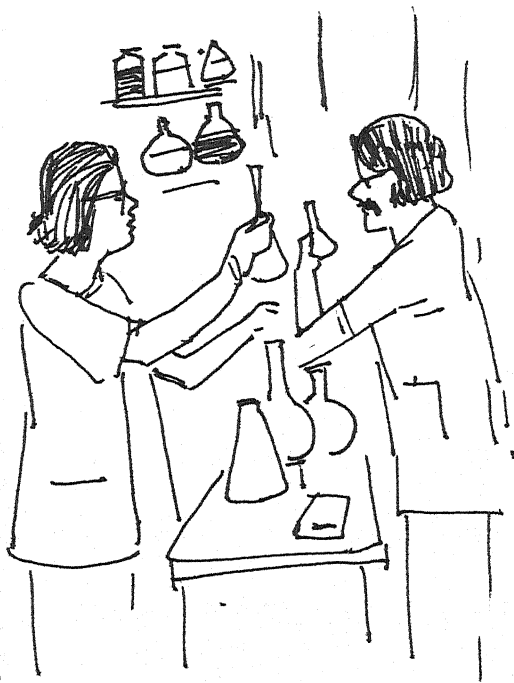
संविधान की 15(3) धारा के अनुसार, राज्यों की नारियों तथा बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष आयोजन से वंचित नहीं किया जा सकता। नारी शिक्षा पर पुरजोर मेहनत से सरकार ने ध्यान दिया। जिससे नई आशा व चेतना का संचार हुआ।

धार्मिक शिक्षा :

संविधान की धारा 28(1) के अनुसार राज्य कोष से संचालित शिक्षा संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। धारा 28(2) के अनुसार किसी राज्य ट्रस्ट द्वारा संचालित एवं राज्य द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। खण्ड 1 की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू न होगी, जिसका प्रशासन राज्य करता हो, किन्तु जो संस्था किसी धर्मस्व या न्यास (ट्रस्ट) के अधीन स्थापित हुई है। जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है। उपर्युक्त प्रकार की शिक्षण संस्थाओं में माता-पिता की आज्ञा बिना बच्चों को उनके धर्म के विपरीत शिक्षा नहीं दी जा सकती है।

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों और दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि :

संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य के दुर्बल वर्गों के विशेषतया अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

स्वाधीनता के पश्चात् देश के नेताओं ने देश में गणतंत्रीय स्वरुप की रचना की जिसे देशवासियों ने स्वीकार किया। देश की ग्रसित जनता, स्वनिर्मित सरकार के निर्देशन में परिपल्लवित होना चाहती थी। इसलिए भारत के उत्थान के लिए देश की जनता का शिक्षित होना अति आवश्यक समझा गया क्योंकि देश की शिक्षित जनता ही सरकार के प्रजातांत्रिक भारत के स्वरूप को वहन करने में सक्षम हो सकती है। अतः देशवासियों की सुख-सुविधा व अन्यत्र व्यवस्थाओं के साथ ही शिक्षा की भी व्यवस्था की जाय।

हम जानते हैं कि भारत में विभिन्न जाति एवं धर्मों के लोग निवास करते हैं उनमें से अधिकांशतः स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक सीमा के निम्न स्तर पर जीवनयापन कर रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी यही स्थिति बनी रही। देश की इस स्थिति को सुधारने एवं नवीन मार्गदर्शन के लिए देश के संविधान निर्माताओं ने समानता का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए "नीति निर्देशक तत्वों" को संविधान में सम्मिलित कर लिया। यही कारण है कि उन्होंने अशिक्षा के वातावरण को परिवर्तित करने की आवश्यकताओं पर बल दिया जिससे देशवासी अपने कल्याण के साथ-साथ भारत तथा सरकार की प्रजातांत्रिक गतिविधियों में सहायक सिद्ध हो सके। इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 45 एवं अनुच्छेद 46 की व्यवस्था की गई, जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है। अनुच्छेद 45 का सम्बन्ध "अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा" के कार्यक्रमों के लिए व्यवस्था करके समाज को न्यायिक दिशा प्रदान के लिए है।

प्रायः समस्त राज्य सरकारों ने केन्द्र के निर्देशन पर अनुच्छेद 45 को तीव्र गति से क्रियान्वित करने का प्रयास किया। उस पर अनेक शोध कार्य भी किये गये परन्तु खेद का विषय है कि अनुच्छेद 46 पर कुछ ही राज्य सरकारों तथा शोधकर्ताओं ने कार्य प्रारम्भ किया। इसी बात को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्री ने "स्वतंत्रता के उपरान्त स्त्री शिक्षा पर राजकीय नीतियों के सन्दर्भ में स्त्री शिक्षा विकास" पर शोध करने का प्रयास किया है। यह विषय उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में अधिक महत्व रखती है। इसलिए इस विषय पर अध्ययन उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

हमारे देश में सदियों से प्रचलित दोषपूर्ण वर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप समाज का एक वर्ग पिछड़ता चला गया। इस कुप्रथा से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले वर्ग में वह जातियाँ आती हैं, जिन्हें आज हम स्त्री जाति कहते हैं। यह सदैव ही उपेक्षित रही है। परन्तु विदेशी शासनकाल में इनकी अत्यधिक उपेक्षा की गई। इसके अतिरिक्त इन जातियों की निर्धनता के कारण शिक्षा के अभाव के साथ-साथ सामाजिक स्थिति भी गिरती गयी और मानतवा के प्रतिकूल इन्हें समाज का एक अछूता अंग माना जाने लगा।

उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। उसी अनुपात में इस प्रदेश में स्त्रियों की संख्या भी और प्रदेशों से अधिक है। अतः देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु, इन कमजोर वर्गों का सर्वांगीण विकास कर उन्हें अन्य वर्गों के समाज स्तर पर लाना नितान्त आवश्यक है।

इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रदेश की जनप्रिय सरकार ने अलग से हरिजन विभाग की स्थापना सन् 1948 में की। धीरे-धीरे इस विभाग के कार्यकलाप बढ़ते गये और कार्य-कलापों में वृद्धि के साथ-साथ इस विभाग को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को चलाने के लिए अधिकाधिक धनराशि की व्यवस्था होती गई। वर्ष 1951-52 में इस विभाग का बजट केवल 39.20 लाख रुपये का था जो बढ़कर 1985-90 में (सातवीं पंचवर्षीय योजना में) 10905.00 लाख रूपये हो गया। इससे स्पष्ट है कि हमारी सरकार इन वर्गों को भी अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाने के लिए निरन्तर प्रयास करती रही है।

वर्तमान समय में विभाग द्वारा इन स्त्रियों के कल्याणार्थ संचालित विभिन्न योजनाओं को मुख्यतः निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है :-

1. शैक्षिक योजनायें
2. आर्थिक

3. स्वास्थ्य एवं आवास आदि।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि उत्तर प्रदेश, भारतवर्ष का सबसे अधिक आबादी वाला प्रदेश है। यहाँ भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की तुलना में स्त्रियाँ अधिक काम करती हैं। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार स्त्री शिक्षा का विकास पहले से अधिक हुआ।

प्रस्तुत शोधकर्त्री का प्रमुख उद्देश्य निम्नवर्गीय जन-मानस तथा दुर्बलवर्गीय इकाइयों की स्त्री शिक्षा की प्रगति का अध्ययन करना है। इस प्रकार इस शोध ग्रन्थ में उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली स्त्री शिक्षा का राजनीतियों द्वारा किस प्रकार सर्वांगीण विकास किया गया है, आदि जानने का प्रयत्न किया गया है तथा अनुच्छेद 46 के क्रियान्वयन में इस बाधक तथा अन्य समस्याओं का भी अध्ययन किया गया है, जो उसकी प्रगति की गति को मन्दशील करती है। इस प्रकार स्त्री शिक्षा का क्रमिक विकास सामने आया व भारत में योजनाबद्ध तरीके से अब इनकी शिक्षा का कार्यक्रम बना है। उत्तर प्रदेश के दूरदराज के क्षेत्रों में भी अब स्त्री साक्षरता का आन्दोलन विकसित हो रहा है।

उत्तर प्रदेश का शिक्षा प्रशासन

राज्य की जनता

मतदान

विधान परिषद

मन्त्रिमण्डल

शिक्षा मन्त्री
(शिक्षा नीति का निर्माता)

विश्वविद्यालय

शिक्षा सचिव
(शिक्षा नीति का सम्पादक)

परामर्शदात्री समिति

शिक्षा निदेशक
(प्रशासन का मुख्य अधिकारी)

शिक्षा निदेशक
(प्रशासन का मुख्य अधिकारी)

बोर्ड आफ हाईस्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट एजूकेशन

बोर्ड सचिव

5 उप शिक्षा निदेशक

2 सहायक उप शिक्षा निदेशक

राज्य के 10 शिक्षा क्षेत्र

10 उप शिक्षा निदेशक
एवम्
8 क्षेत्रीय विद्यालय निरीक्षिकाएं

जिला विद्यालय निरीक्षक

उप बालिका विद्यालय निरीक्षिकाएं

(तीन जिलों में विद्यालय निरीक्षिकाएं)

अनेक उप शिक्षा निरीक्षक

अनेक सहायक शिक्षा निरीक्षक

सहायक जिला निरीक्षिकाएं

सह शिक्षा निदेशक

प्रशिक्षण निदेशक

तालिका - 1

रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि (प्रतिशत में)

क्षेत्र	1972-73 से	1977-78 से	1983 से
कृषि	2.32	1.20	0.65
सेवाएं	3.67	4.69	2.50
समस्त क्षेत्र	2.82	2.22	1.55

स्रोत - योजना आयोग

तालिका - 2

विकलांगों हेतु सेवायोजन कार्यालयों के विशिष्ट कोष्ठों द्वारा सम्पादित कार्य

क्रमाँक	कोष्ठकों के नाम	पंजीयन	नौकरी पर लगाये गये	जीवित पंजिका
1.	आगरा	260	13	2422
2.	इलाहाबाद	255	01	1623
3.	वाराणसी	128	05	781
4.	लखनऊ	258	05	1593
5.	गाजियाबाद	81	04	603
6.	बरेली	61	04	840
7.	गोरखपुर	140	02	1954
8.	मथुरा	138	18	481
9.	अलीगढ़	104	01	623
10.	कानपुर	838	43	3429

वर्ष 1989 में प्रदेश के समस्त सेवायोजन कार्यालयों द्वारा विकलांगों के सेवायोजन सहायतार्थ जो कार्य किये गये उनका विवरण निम्नवत् है -

तालिका नं0 3

प्रदेश के समस्त सेवायोजन कार्यालयों द्वारा विकलांगों के सहायतार्थ कार्यों की प्रगति

क्रमाँक	विकलांगों की श्रेणी	पंजीयन	नौकरी पर लगाये गये	वर्ष के अन्त में सजीव पंजिका पर उपलब्ध अभ्यर्थी
1.	नेत्रहीन	252	04	2950
2.	मूक बधिर	151	13	899
3.	अपंग	2573	123	35947
4.	कुष्ठ रोग	02	..	..
5.	श्वांस रोग	..	..	..
	योग	5678	140	29801

तालिका नं0 4

क्रमाँक	व्यवसाय वर्गीकरण	सक्रिय पंजीयन	पंजीयन	नियुक्तियाँ
1.	**स्नातक (योग)**	1289	365	49
(क)	इंजीनियर	816	276	46
(ख)	चिकित्सक	438	84	3
(ग)	पशु चिकित्सक	12	3	-
(घ)	कानून	8	2	-
(ड़)	अन्य	15	-	-
2.	**स्नातकोत्तर (योग)**	**300**	**149**	-
(क)	कला	58	14	-
(ख)	विज्ञान	50	8	-
(ग)	शिक्षा	85	91	-
(घ)	इंजीनियर	15	9	-
(ड़)	चिकित्सक	66	18	-
(च)	कानून	2	-	-
(छ)	अन्य	24	9	-
	महायोग	1589	514	49

तालिका नं0 5

सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या

त्रिमास	कार्यरत कर्मचारियों की संख्या				
	केन्द्र सरकार	राज्य सरकार	अर्द्ध केन्द्र सरकार	अर्द्ध केन्द्र सरकार	स्थानीय निकाय
जून 1987	471072	764453	245833	271294	339193
सितम्बर 87	468436	764969	269353	246965	336501
दिसम्बर 87	465091	765907	247822	287306	336599
मार्च 1988	463597	769689	248005	289760	338386
जून 1988	464193	769892	248403	272049	337798
सितम्बर 88	463248	768985	246430	274394	336261
दिसम्बर 88	461564	761253	248772	287265	336927
मार्च 1989	461795	771736	250073	285862	339256

तालिका नं0 6

निजी क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या

त्रिमास	कार्यरत कर्मचारियों की संख्या		
	ऐक्ट संस्थान	नान एक्ट संस्थान	योग
जून 1987	439855	70727	510582
सितम्बर 1987	134282	70101	504383
दिसम्बर 1987	466197	714467	537664
मार्च 1988	471997	71123	543120
जून 1988	444167	68543	512710
सितम्बर 1988	437076	68521	505597
दिसम्बर 1988	469156	69213	538369
मार्च 1989	466343	69524	535867

तालिका नं0 7

कार्यरत कर्मचारियों की संख्या

त्रिमास	केन्द्र सरकार	राज्य सरकार	अर्द्ध सरकार (केन्द्र)	अर्द्ध सरकार (राज्य)	स्थानीय निकाय
जून 1988	464193	769892	248493	272049	337798
सितम्बर 1988	463248	768985	246430	274394	336261
दिसम्बर 1988	461564	761253	248772	287265	336927
मार्च 89	461863	772595	250233	286351	338871
जून 89	463226	767522	249457	275528	340706
सितम्बर 89	463819	765049	250883	280378	339267
दिसम्बर 89	465585	766418	250903	3037746	338244
मार्च 90	465822	768047	253546	302717	338919

तालिका नं0 8

कार्यरत कर्मचारियों की संख्या

त्रिमास	कार्यरत कर्मचारियों की संख्या		
	एक्ट अधिष्ठान	नान एक्ट अधिष्ठान	योग
जून 88	**444167**	68543	512710
सितम्बर 88	437076	68521	505597
दिसम्बर 88	469156	69213	538369
मार्च 89	468468	69570	538038
जून 89	435298	66898	502196
सितम्बर 89	440469	67192	507661
दिसम्बर 89	468015	68552	536567
मार्च 90 (अनन्तिम)	468406	68770	537176

तालिका नं0 9

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में महिला कर्मचारियों की संख्या (1988-89)

वर्ष	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग
मार्च 1988	147561	45090	192651
मार्च 1989	154293	45732	200025

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आलोच्य वर्ष में महिला कर्मचारियों की संख्या गत वर्ष मार्च 1989 की अपेक्षा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों में मिलाकर 7374 की वृद्धि हुई।

तालिका नं0 10

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में महिला कर्मचारियों की संख्या (1989-90)

वर्ष	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग
मार्च 1989	152947	45866	198813
मार्च 1990	158350	46719	205069

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आलोच्य वर्ष में महिला कर्मचारियों की संख्या गत वर्ष मार्च 1989 की अपेक्षा सार्वजनिक एवं निजी दोनों में मिलाकर 6256 की वृद्धि हुई।
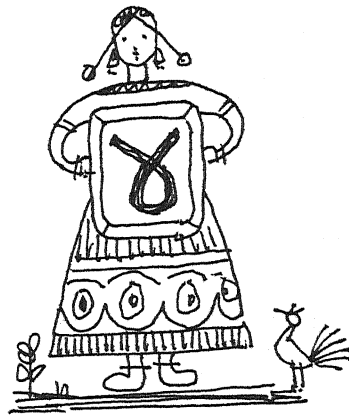
उत्तर प्रदेश में 1947 के पश्चात् स्त्री शिक्षा का विकास

****

शिक्षा मानव के सर्वोन्मुखी विकास का सर्वोत्तम साधन है। शिक्षा मनुष्य को अपने वातावरण के अनुसार ढालने, सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने, स्वस्थ जीविकोपार्जन करने तथा जीवन के उत्कृष्ट मूल्यों के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है। प्रजातांत्रिक शासन पद्धति में जनता को शिक्षित होने से जहाँ एक ओर प्रजातंत्र को दृढ़ आधारशिला मिलती है, वहीं दूसरी ओर लोगों को अपने दायित्व को निर्वाह करने की सामर्थ्य भी प्राप्त होती है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए

शिक्षा को विशेषकर स्त्री शिक्षा को प्रदेश के नियोजित विकास में प्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न योजना अवधियों में शैक्षिक सुविधाओं में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

स्त्रियों की प्रस्थिति :

शिक्षा ही मनुष्य की समस्त मानवीय गुणों से सुसम्पनन करके अखिल विश्व के प्राणि मात्र में उसे गौरवपूर्ण उच्चतम शिखर श्रेणी पर आसीन कराती है। मानव के शारीरिक विकास के साथ-साथ शिक्षा का सशक्त माध्यम ही शनैः शनैः उस मानव को विकासोन्मुख प्रगति की ओर उत्तरोत्तर गतिमान करते
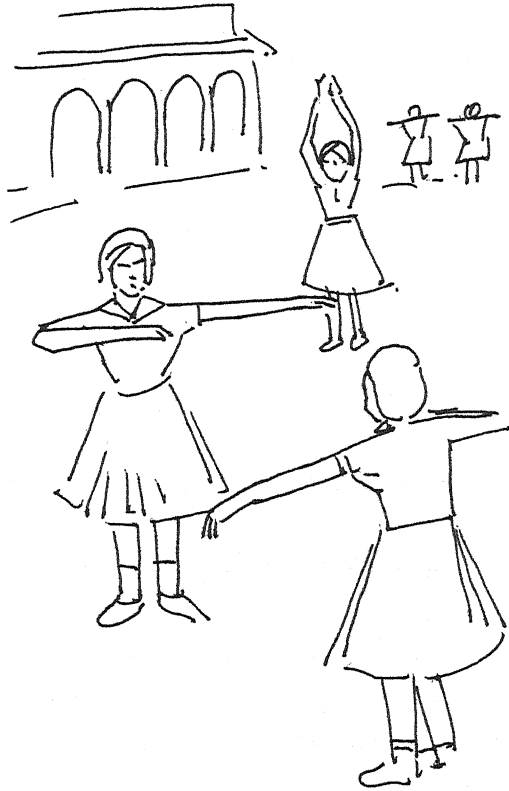
हुए उसमें शनैः शनैः उस मानव को विकासोन्मुख प्रगति की ओर उत्तरोत्तर गतिमान करते हुए उसमें धैर्य, विवेक, सहनशीलता, सहिष्णुता, सांस्कारिक सुसम्पन्नता, बौद्धिक और सामाजिक सजगता आदि ऐसे मानवोचित् विशिष्ट गुणों से अलंकृत करते हुए एक दिन उसके स्वरूप को परिष्कृत करके उसे युगानुकूल समाज के परिवर्तित परिवेश में एक सुगम, सहज और सुखमय जीवन जीने की कला में निष्णात बनाकर मानव से महामानव की श्रेणी में पहुँचा देती है। इस कथन की सार्थकता के प्रमाण स्वरूप अतीत के अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें शिक्षा के प्रभाव प्रताप से अनेक महापुरुषों ने देश को समय-समय पर प्रकारान्तर से कितने दुर्गम, आशातीत, अप्रत्याशित लाभ देकर गौरवान्वित किया है। शिक्षा के सर्वांगीण विवेचन से यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य है कि एक सुशिक्षित व्यक्ति किन-किन अनेक रुपों में देश, प्रदेश और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उसको और अधिक विश्लेषित करने से यह मात्र एक मानव के रूप में अपने जिनके लिए एक संरक्षक अथवा अभिभावक के रूप में अपने कुटुम्ब के लिए, एक प्रबुद्ध नागरिक

के रूप में प्रजातांत्रिक प्रशासन व्यवस्था के लिए एक सच्चे, समाजसेवी के रूप में समाज के लिए अथवा एक उद्‌बुद्ध नेता अथवा सजग प्रहरी या दिशादाता के रूप में सम्पूर्ण मानव समाज सहित निज देश, प्रदेश से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक के लिए लाभ का स्रोत बन सकता है।

इसी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान समय में देश-प्रदेश में सुनियोजित शैक्षिक विकास हेतु सुलभ वित्तीय संसाधनों का आनुपातिक दृष्टि से अधिकांश स्त्री शिक्षा के लिए प्राविधानित किया जा रहा है। देश के परिवर्तित परिवेश और वर्तमान सामाजिक उपेक्षाओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार की योजनाओं, परियोजनाओं के क्रियान्वयन के साथ-साथ महिला शैक्षिक नीति में परिवर्तन एवं उन्नत परिवर्द्धन के लिए सतत चिन्तन चल रहा है।

2. जनतंत्र में स्त्री शिक्षा का महत्व :

अब तक शिक्षा के लिए बनायी गई योजनाओं और परियोजनाओं में इस बात के लिए सतत एवं उत्कृष्ट प्रयास किए गये हैं कि इनके क्रियान्वयन के माध्यम से स्त्री शिक्षा की विषयवस्तु में परिवर्तन, अध्यापन की उन्नति पद्धतियों की ग्राहयता संशोधन और परिवत्रन द्वारा परीक्षा प्रणाली में स्तरोन्नयन, पाठ्य पुस्तक अध्ययन एवं अध्यापन और प्रशिक्षण में प्रत्याशित सुधार लाया जा सके।

इसी सन्दर्भ में राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री शिक्षा की वर्तमान संरचना एवं व्यवस्था में समाज की अपेक्षाओं के अनुरुप आवश्यक सम्बर्द्धन के निमित्त चिन्तन चल रहा है। भारत सरकार द्वारा "शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य" नामक दस्तावेज प्रसारित होने पर प्रदेश के प्रत्येक जनपद में विचार गोष्ठियाँ अक्टूबर 1985 तक आयोजित की गई। इन गोष्ठियों में प्राप्त सुझावों एवं संस्तुतियों का संकलन मण्डलीय स्तर पर किया गया। नवम्बर, 1985 के प्रथम सप्ताह में राज्य स्तर पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें समाज के सभी वर्गों से आमंत्रित प्रतिभागियों द्वारा शिक्षा के विभिन्न स्तरों एवं आयामों जैसे - प्राथमिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा एवं सतत शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा, महिला शिक्षा, परीक्षा पद्धति उच्च शिक्षा, शिक्षक, प्रशिक्षक वित्तीय संसाधनों की

व्यवस्था तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों के निर्माण आदि पर गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श किया गया। राज्यस्तरीय विचार गोष्ठी में प्राप्त सुझाव एवं संस्तुतियाँ भारत सरकार को प्रेषित कर दी गयी थी।

3. **विभिन्न आयोगों और समितियों के सुझाव :**

यह प्रदेश 2,94,411 वर्ग किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में स्थित है। इसकी जनसंख्या 11,08,62,00 है। इतने बड़े विस्तृत क्षेत्र और सर्वाधिक जनसंख्या के आधार पर इसे देश के विशाल प्रदेश होने का गौरव प्राप्त है। शिक्षा जगत की सार्थक और व्यापक व्यवस्था के अनुरूप कार्य सम्पादन में सुविधा की दृष्टि से इस पूरे प्रदेश का विभाजन विभिन्न 13 मण्डलों में किया गया है। प्रत्येक मण्डल के शैक्षिक एवं प्रशासनिक कार्य सम्पादन के निमित्त एक मण्डलीय उप शिक्षा निदेशक का कार्यालय है। इसी प्रकार ऐसे सभी 13 मंडलों में बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था हेतु एक-एक मण्डलीय बालिका विद्यालय निरीक्षिका के कार्यालय व्यवस्थित है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मण्डल में एक-एक सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक) का कार्यालय भी है। मण्डल स्तर के बाद जनपदीय स्तर पर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा व्यवस्था हेतु प्रदेश के सभी जनपदों में एक-एक जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालयों की व्यवस्था की गयी है। उसी व्यवस्था के अनुरुप प्राथमिक और जूनियर स्तर की शैक्षिक व्यवस्था और नियंत्रण के लिए सभी जनपदों में एक-एक जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय स्थापित किये गए हैं।

उच्च शिक्षा के स्तर में गुणवत्ता की दृष्टि से विद्यमान संस्थाओं की प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों आदि को सुदृढ़ किया जायेगा। नवीन शिक्षण संस्थायें केवल शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े एवं असेवित क्षेत्रों में तभी प्रारम्भ की जायेगी जबकि मानकों के अनुसार भौतिक सुविधाओं एवं इन्फ्रास्ट्रक्चर की व्यवस्था कर ली गयी है।

उच्चकोटि के महाविद्यालयों की स्वायत्तता प्रदान की जायेगी जिससे कि वह क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप अपने पाठ्यक्रमों को पुनर्गठित कर लागू कर सकें।

शैक्षिक कैलेन्डर का निर्धारण कर शैक्षिक सत्रों को नियमित करने, शिक्षण एवं परीक्षा व्यवस्था में सुधार का प्रयास किया जा रहा है।

शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु पुनर्बोधात्मक कार्यशालाओं, समर इंस्टीट्यूट आदि की व्यवस्था की जा रही है।

शोध उन्नयन हेतु प्रयोगशालाओं को सुदृढ़ किया जायेगा तथा प्रतिभावान् छात्रों को छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना प्रस्तावित है।

छात्र एवं शिक्षक कल्याण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जायेगी। गेम्स स्पोर्टस, एन0सी0सी0, एन0एस0एस0, स्काउटिंग-राइडिंग, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में छात्रों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

जब हम उच्च शिक्षा के इतिहास का अवलोकन करते हैं तो उससे यह ज्ञात होता हे कि महाविद्यालयों की स्थापना के बाद विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। सन् 1857 में सर्वप्रथम भारत से विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। उस समय उनके दो प्रमुख कार्य थे - 1. महाविद्यालयों की देखभाल और 2 - परीक्षाओं का संचालन। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विश्वविद्यालयों का कार्य महाविद्यालयों को मान्यता देना था। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में यह एक प्रमुख अवधारणा रही है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस अवधारणा को बदलने का प्रयास किया गया।

इस दिशा में प्रमुख कार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय में परास्नातक कक्षायें खोलने से हुआ। इसके पूर्व परास्नातक शिक्षा महाविद्यालयों द्वारा दी जाती थी। परास्नातक कक्षायें महाविद्यालयों से तोड़कर विश्वविद्यालयों में चलायी जाने लगी। इसका कारण यह था कि महाविद्यालय में पढ़ाई-लिखाई का समुचित स्तर नहीं रख पाते थे। इस शताब्दी के प्रारम्भ में बहुत से नये विश्वविद्यालय खोले गए। जैसे बनारस, अलीगढ़, पटना, लखनऊ, अन्नामलाई आदि। और इन विश्वविद्यालयों में एकरुपता बनाये रखने का प्रयास किया गया। कालान्तर में विश्वविद्यालयों में यूनिटरी पद्धति पर जोर दिया गया।

विश्वविद्यालयों की संख्या में वृद्धि के कारण विश्वविद्यालयी पद्धति पहले से अधिक उलझनपूर्ण हो गयी। आज जनसंख्या की वृद्धि की दर की अपेक्षा विश्वविद्यालयों में इनरोलमेंट 6 गुना अधिक है जबकि जनसंख्या की वृद्धि 2.2 प्रतिशत है। वहीं पर उच्च शिक्षा में इनरोलमेंट की दर 12 प्रतिशत है।

4. पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री शिक्षा :

मुख्यतः पिछले 28 वर्षों के दौरान 1947 के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का विस्तार बहुत तेजी से हुआ। उस समय विश्वविद्यालयों की संख्या 20 थी और विद्यार्थियों की संख्या लगभग 2.5 लाख विद्यार्थी अध्ययन कर रहे थे और विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर 100 हो गयी थी। पूरे देश में लगभग 3500 महाविद्यालय खुले हुए हैं। विश्वविद्यालयों की संख्या में इस रफतार से वृद्धि बहुत सी अन्य सामाजिक समस्याओं एवं वित्तीय समस्या को जन्म दिया। उसके साथ ही उनके प्रबन्ध और पाठ्यक्रम सम्बन्धी प्रश्न खड़े हो जायेंगे। 25 साल पहले सामान्यतः एक विश्वविद्यालय

में 15 से 16 हजार विद्यार्थी हुआ करते थे। आज उसकी तुलना में यह संख्या 50 हजार से लेकर 1.5 लाख तक पहुँचा चुकी है। राजस्थान विश्वविद्यालय में जहाँ पर लगभग 220 सम्बद्ध महाविद्यालय हैं और छात्रों की संख्या लगभग 2.5 लाख पहुँच चुकी है। 1947 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में 50 हजार विद्यार्थी थे। आज इस विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या लगभग 2.5 लाख पहुँच चुकी है। इससे यह प्रकट होता है कि: उच्च शिक्षा को आसानी से प्राप्त करने की दिशा में आश्चर्यजनक कार्य हुआ है। ऐसा इसलिए सम्भव हो सका कि हमने प्रजातांत्रिक व समान शिक्षा के अवसर प्रदान किये हैं। स्वतंत्रता के पहले उच्च शिक्षा विशेष वर्ग के व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते थे। जबकि इस समय बिना किसी भेद-भाव के जो भी चाहे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यद्यपि इस समय भी उच्च शिक्षा की सुविधाएं शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित है। सरकार का यह रुझान रहा है कि उच्च शिक्षा को ग्रामीण अंचलों तक पहुँचाया जाए। परिणामस्वरूप सन् 1964 से सन् 1972 के मध्य लगभग 200 महाविद्यालय खोले गये हालाँकि इन महाविद्यालयों में लागू दोषपूर्ण पाठ्यक्रमएवं निम्न शैक्षणिक स्तर से अनेकों सामाजिक बुराइयों की उत्पत्ति हो गयी। कुल मिलाकर देश की उच्च शिक्षा में तीन प्रमुख समस्यायें आज भी विद्यमान हैं - 1. शिक्षा तक रुख की पहुँच, 2. गुणवत्ता में गिरावट, 3. घटिया शैक्षिक प्रबन्ध। इन पर विजय पाने के लिए भारत के जन-मान्स, भारत सरकार एवं प्रान्तीय सरकारों को अनवरत संघर्ष करने की आवश्यकता है।

5. स्त्री शिक्षा की नीति :

विगत वर्षों में देश की उच्च शिक्षा पद्धति में प्रमुख दो बातों 1- बढ़ती हुई विद्यार्थियों की संख्या को तुष्टि करना व 2. दूसरी तरफ शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये भी रखना प्रमुख समस्या है। इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षानीति (1986) में स्पष्ट रूप से इस बात पर बल दिया गया है कि उच्च शैक्षणिक संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि उनके पास वांछित स्तर की भौतिक संसाधन, तकनीकी शोध सहायता और कितने उपकरण आदि खरीदने के साधन उपलब्ध होंगे। आयोग का यह प्रयास रहा है कि आवश्यक सुविधाओं को मुहैया कराया जाय जिससे कि शिक्षा पद्धति की गुणवत्ता व मात्रा में सन्तुलन बना

रहे। देश की उच्च शिक्षा में पिछले दशक में छात्रों के इनरोलमेंट, शैक्षिक स्टाफ तथा संस्थाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। इसके साथ ही देश में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर 1991 तक 145 तक पहुँच गयी है। अवलोकन हेतु इसी अध्याय में विश्वविद्यालयों, संस्थाओं, डीमड विश्वविद्यालयों की एक क्रमबद्ध सूची दी गयी है। यदि हम विद्यार्थी और संस्थाओं की बढ़ती हुई संख्या के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि विगत वर्षों में इनरोलमेन्ट और संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1979-80 में 108 विश्वविद्यालयों में 26.48 लाख विद्यार्थियों का इनरोलमेन्ट हुआ था। 11 संस्थायें डीमड विश्वविद्यालय की थी और महाविद्यालयों की संख्या 4558 थी। वर्ष 1991 तक विश्वविद्यालयों की यह संख्या बढ़कर 145 हो गयी तथा विद्यार्थियों का इनरोलमेन्ट 39.48 लाख तक पहुँच गया। डीमड संस्थाओं की संख्या 25 और महाविद्यालयों की संख्या 6912 हो गयी।

20 वर्षों के दौरान (1969-70 से 1988-89 तक) विद्यार्थियों का इनरोलमेंट 4.2 प्रतिशत जबकि 1969-70 से 1978 के मध्य 5.3 प्रतिशत था। यदि हम 1979-80 में 1988-89 के मध्य का इनरोलमेंट देखें तो उसमें एक निश्चित बढ़ोत्तरी की दर नहीं पाते। इनरोलमेंट एक वर्ष में बढ़ा है और वहीं दूसरे वर्ष में घटा भी है। सबसे कम संख्या में वृद्धि वर्ष 1979-80 में हुई जो 1.2 प्रतिशत थी और अधिकतम वृद्धि 1981-82 में हुई जो 7.3 प्रतिशत थी। 1988-89 में वृद्धि की दर 3.5 प्रतिशत थी।

यदि हम पूरे देश की वृद्धि दर का औस्त देखें तो 1984-85 से 1988-89 तक 3.6 प्रतिशत

हुई है। संलग्न सम्बन्धित परिशिष्टों को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रान्तों में वृद्धि दर अलग-अलग है।

स्तरवार स्नातक, परास्नातक, शोध और डिप्लोमा में इनरोलमेंट का अध्ययन करने हेतु भी परिशिष्ट संलग्न की गयी है। एक परिशिष्ट ऐसी भी संलग्न की गयी है जिसमें विश्वविद्यालयों के विभागों, कालेजों एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों का इनरोलमेंट वर्ष 1985-86 से 1988-89 तक अलग से दर्शाया गया है। सम्बद्ध महाविद्यालयों में विभिन्न स्तरों पर इनरोलमेंट 83 प्रतिशत था। इन सभी महाविद्यालयों का स्नातक स्तर का इनरोलमेंट का प्रतिशत 87.8 था। परास्नातक स्तर का 56.6 प्रतिशत था और शोध स्तर का 15 प्रतिशत था तथा डिप्लोमा में इनरोलमेंट 43.4 प्रतिशत था।

संकायवार इनरोलमेंट की परिशिष्ट को देखने से ज्ञात होता है कि 1984-85 से 1988-89 तक इनरोलमेंट की प्रतिशत वृद्धि दर औसत थी। कला संकाय में वृद्धि सभी संकायों से अधिक थी। उसके बाद वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय तथा विधि संकाय का प्रतिशत था। प्रत्येक वर्ष सभी संकायों का प्रतिशत यह दर्शाता है कि उक्त सभी संकायों की वृद्धियों में आंशिक अन्तर है। उदाहरणस्वरूप कला संकाय का इनरोलमेंट 40.3 प्रतिशत व वाणिज्य में 21.5 प्रतिशत था। 1984-85 से 1988-89 में विज्ञान संकाय का इनरोलमेंट 19.7 प्रतिशत था। दूसरे संकायों में इनरोलमेंट की दर लगभग समान रही।

स्तरवार महाविद्यालयों की वृद्धि में जानकारी हेतु एक परिशिष्ट संलग्न की गयी है। उसमें 1984-85 से 1988-89 तक का विवरण दिया गया है। इस अवधि में महाविद्यालयों की संख्या में अतिरिक्त वृद्धि 1322 हुई है। इसी अवधि में उत्तर प्रदेश में अधिकतम वृद्धि हुई जो 507 हैं।

विश्वविद्यालय के विभागों/महाविद्यालयों में सेवारत प्राध्यापकों की संख्या की जानकारी हेतु भी एक परिशिष्ट संलग्न की गयी है। 1988-89 में अध्यापकों की संख्या 54,973 थी। इसमें 6432 प्रोफेसर, 13468 रीडर व 32764 प्रवक्ता और 2309 ट्यूटर और डिमान्सट्रेटर थे। वरिष्ठ अध्यापकों, जिसमें रीडर व प्रोफेसर आते हैं, का प्रतिशत कम था। वर्ष 1988-89 में सम्बद्ध महाविद्यालयों में

अध्यापकों की संख्या 1,94,095 थी जिसमें वरिष्ठ अध्यापक, 25,815 प्रवक्ता, 1,59,546 और 8,734 ट्यूटर और डिमान्सट्रेटर थे। 1987-88 में सम्बद्ध महाविद्यालयों में जो संख्या थी उसकी तुलना में 1988-89 में 5,287 अध्यापक वर्ग की वृद्धि हुई जैसा कि 1986-87 की तुलना में 1987-88 में 5570 की वृद्धि हुई थी।

इसी अध्याय में एक ऐसी भी परिशिष्ट संलग्न की गयी है जिसमें वर्ष 1983-84 से 1987-88 तक प्रदान की गयी डाक्टरेट उपाधियों की संख्या दर्शाई गयी है। इन पाँच वर्षों की अवधि में प्रदान की डाक्टरेट की डिग्रियों की संख्या 1985-86 में 7346 थी। 1986-87 की अवधि में यह संख्या घटकर 7295 हो गयी और 1987-88 में यह संख्या 7275 रह गयी। 1987-88 में कला संकाय में सबसे अधिक डिग्री 2933 प्रदान की गयी। उसके बाद विज्ञान संख्या में प्रदान की गयी डिग्रियों की संख्या आती है जो 2842 है। व्यावसायिक संकाय में सबसे अधिक डाक्टरेट डिग्री कृषि संकाय में (557) प्रदान की गयी। अभियांत्रिकी / तकनीकी संकाय का स्थान दूसरा है। इसमें प्रदान की गयी डिग्रियों की संख्या 236 थी। वाणिज्य संकाय में 225 तथा शिक्षा संकाय में 205 डिग्रियाँ प्रदान की गयी थी। अन्य संकायों की स्थिति इस प्रकार है। मेडिसिन-93, पशु चिकित्सा विज्ञान 74, विधि 51 और दूसरे संकायों में 99 डाक्टरेट डिग्रियाँ प्रदान की गयी थीं।

उच्च शिक्षा में चतुर्मुखी विकास क्रम को सही मायने में समझने के लिए विश्वविद्यालयों/ डीमड विश्वविद्यालयों की निरन्तर संख्या में वृद्धि व उसमें शिक्षण सुविधाओं का विकास, हर स्तर पर शिक्षकों व छात्रों के इनरोलमेंट में वृद्धि तथा उपरोक्त संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाने वाली डिग्रियों के प्रकार व संख्या

में वृद्धि को स्पष्ट रूप से दर्शाते हुए कुछ तालिकायें व स्तम्भ चित्र इसी अध्याय में आगे दिये गए हैं। आवश्यकतानुसार इन्हें देखा जा सकता है।

उद्देश्य :

उपरोक्त समस्या पर अध्ययन करने के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त 1948 से विशेष कर 1975-76 के स्त्री शिक्षा तथा कल्याणकारी सम्बन्धी राजकीय नीतियों का अध्ययन।
2. स्त्री शिक्षण योग्य बालक, बालिकाओं के शिक्षा के स्तर की समीक्षा।
3. उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा व्यवस्था का विवेचन।
4. उपलब्धि की प्राप्ति में बाधक समस्याओं की विवेचना एवं उनके निवारण के उपाय।

समस्या का परिसीमन :

1. इस अध्ययन का विशेष सम्बन्ध उत्तर प्रदेश की स्त्री शिक्षा तथा कल्याणकारी विषयों से है।
2. स्वतंत्रता उपरान्त 1948 से विशेषकर 1975-76 के पश्चात उपरोक्त जनमानसों की शैक्षिक तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं तथा राजकीय नीतियों के संदर्भ में विशेष रूप से अध्ययन किया जायेगा।
3. धन व समय की कमी के कारण, विषय सम्बन्धी प्रगति की समीक्षा प्रकाशित आंकड़ों के आधार पर ही की जायेगी। प्रश्नावली के आधार तथा पत्राचार द्वारा व व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा वह आंकड़े भी एकत्रित किये जायेंगे, जो प्रगति में बाधक सिद्ध हो रहे हैं।
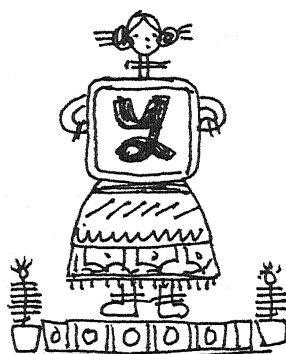
लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति

****

राज्य सरकार किसे ठीक शिक्षा मानती है, स्कूल, कालेज कैसी शिक्षा देना चाहते हैं और देते हैं, माँ-बाप की शिक्षा जगत से क्या अपेक्षाएं हैं और अमीरों को कैसी शिक्षा चाहिए और उपलब्ध भी है, यह सभी और ऐसे अनेक सवाल अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसके पास न तो पैसा है और न ही सम्पर्क, उन्हें कुछ मिलता है या नहीं। बाप कहता है "साहब बाप, दादा, परदादा ने

झाड़ू लगाई, अब हम लगा रहे हैं और (लड़के की तरफ इशारा करते हुए) यह भी वही कर रहा है और करता रहेगा। हमारे भाग्य में तो भंगी ही रहना है।" लड़की की तरफ इशारा करके कहता है, "इसका तो बड़ा सवाल है, पढ़ायें कैसे और इसकी शादी के लिए दहेज लाएँ कहाँ से?"

जो सामन्त हैं, उन्हें "सब कुछ" मिल जाता है किन्तु लालच और भय से मुक्ति नहीं मिलती। न मिलती है दया और न ही विनय। हमारे यहाँ कहा करते थे कि जो शिक्षा मनुष्य को विनय नहीं सिखाती वह उस माँ की तरह है जिसके स्तनों में दूध के बदले विष भरा हो। फलतः शिक्षा द्वारा उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती जो उपेक्षित है। आज पैसे और सत्ता की होड़ में समाज का विभाजन हो रहा है। इतना ही नहीं हम जैसी शिक्षा दे रहे हैं, उससे यह अखण्ड भारत खण्ड-खण्ड हो जायेगा और दूरगामी परिणाम यह होंगे कि समूची दुनिया का विभाजन हो जायेगा।

गाँधी जी की दी हुई नई शिक्षा में ज्ञान-लाभ और स्वतंत्र चिन्तन एवं आदर्शमय जीवन को ऊँचे से ऊँचा स्थान दिया गया था। उन्होंने उसका तरीका ही नहीं बताया था बल्कि उसे प्रत्यक्ष करके भी दिखाया था। आधुनिक औद्योगिक युग में हम आदर्श एवं मूल्यों पर आधारित जीवन के विपरीत जा रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ने गाँधी जी से भी पहले लगभग वही कहा था और प्रत्यक्ष किया भी था। उनके द्वारा दिखाये आदर्श मार्ग को भी हमने गाँधी जी की तरह आत्मसात् न कर पाया।

इस समय "शिक्षा में क्या परिवर्तन हो" यह प्रश्न लेकर चर्चा चल रही है। सरकार कह रही है कि

वह नई शिक्षा ऐसी हुई जिसके द्वारा समाज में स्वतंत्र चिन्तन, सच्ची मेहनत-शारीरिक और बौद्धिक, आपसी देखभाल और सत्य व सौन्दर्य की साधना करने की वृत्ति पैदा न हो तो, वह क्या सचमुच बुनियादी परिवर्तन होगा।

1. **शासकीय नीति :**

शिक्षा तो खासतौर पर ऐसा विषय है जिसमें हर प्रश्न का हल अपनी परिस्थिति के आधार पर निकलेगा। एक पाठ्यक्रम बना दिया और देश के सारे स्कूलों-कालेजों में लागू कर दिया गया- ऐसी प्रक्रिया अपनाना ही पर्याप्त न होगा और इससे भी बड़ी भूल यह है कि जब यह सोचा जाए कि शिक्षा तो सरकार की जिम्मेदारी है। हाँ, शिक्षा के लिए वातावरण और उचित सुविधायें जुटाना, राज्य का अनिवार्य काम है, किन्तु शिक्षा का स्वरुप कैसा हो, इसके बारे में स्वतंत्र रूप से निर्णय किया जाना चाहिए। आज यह और भी जरुरी हो गया है। इसलिए कि राज्य जो शिक्षा का ढाँचा बनाना चाहेगा वह राज्यकर्ताओं के व्यक्तिगत आदर्शों पर आधारित होगा।

परिस्थिति तो अब ऐसी हो गयी है कि समाज में खुली चर्चा के विषय सरकार या पैसे वालों के हाथ में चले जा रहे हैं। आम विचार विनिमय कम होता जा रहा है। अर्थात् शिक्षा में ठीक ढंग की बदल लाने के लिए यानी शिक्षा को गाँवों, शहरों के हर घर में प्रवेश कराने के लिए गाँधी जी के विचारों को फिर से समझ कर शिक्षा को एक आन्दोलन के तौर पर खड़ा करना पड़ेगा। पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियों की शिक्षा शासन की नीति से और भी आगे आने का प्रयास आरंभ हुआ है जिससे कुछ आशायें बँधी हैं। ऐसा लगने लगा है कि स्त्री शिक्षा का भविष्य उज्जवल है।

2. **लड़कियों के प्राथमिक विद्यालय व उनका नामांकन :**

डा0 जाकिर हुसेन ने कहा था कि आ की तालीम में जिस चीज का सबसे ज्यादा अभाव महसूस किया जा रहा है वह "दुनिया की समग्रता" है और वही उनकी शिक्षा विचारधारा की बुनियादी

चीज है। उन्होंने कहा है कि तालीम का उद्देश्य इंसान को सत्य को एकता का ज्ञान कराना है। तालीम का काम है कि वह जीवन के ऐक्य को और "व्यक्तित्व के समन्वय" को बनाये रखे। लेकिन, जैसा कि रवीन्द्र नाथ ने कहा है, तालीम में जो जोर आपस में मेल न रखने वाली जानकारियों को हासिल करने के ऊपर दिया जाता है उससे जिन्दगी के बौद्धिक, शारीरिक और आध्यात्मिक पहलुओं में विच्छेद कायम किया जा रहा है। विद्यालय तो " एक ऐसी दुनिया होनी चाहिए जहाँ प्रेम ही जीवन का मार्गदर्शन करने वाली शक्ति हो। "शिक्षा वह चीज है जिसके द्वारा छात्र अपने गुरु के साथ एक उच्च आदर्श वाली जिन्दगी में साझीदार बन सके। "वे मनुष्य और प्रकृति के ऐक्य, कर्म और ज्ञान के ऐक्य, मानव की विविधताओं के ऐक्य और पूर्वी और पश्चिमी जगत के ऐक्य को देखने के लिए लालायित थे। वे पीढ़ियों के ऐक्य व भूतकाल और भविष्य के ऐक्य को देखना चाहते थे। गुरुदेव की दृष्टि विश्व की सर्वव्यापी एकता के ऊपर लगी हुई थी और उनकी कोशिश थी कि शिक्षा के द्वारा जिसमें स्वयं की शिक्षा भी शामिल है, इस ऐक्य की प्राप्ति की जा सके। इसलिए उन्होंने अपने सपने की शिक्षा संस्था का एक ऐसे आश्रम के रूप में वर्णन किया है जिसमें "आश्रमवासी जीवन के उच्चतम ध्येयों को पाने के लिए साधना कर रहे हों, प्रकृति की शान्ति को पाने की साधना कर रहे हों, जहाँ जिन्दगी सिर्फ ध्यान पूजा-पाठ ही नहीं है, बल्कि अपनी हर प्रवृत्ति में सजग होकर लगी हुई हो, जहाँ छात्रों का मानस संकीर्ण राष्ट्रीय वाद को उच्चतम सत्य की संज्ञा देकर सुप्त नहीं कर दिया जाता हो, जहाँ उनको यह ज्ञान दिया जाता हो कि इंसान की यह दुनिया ईश्वर का
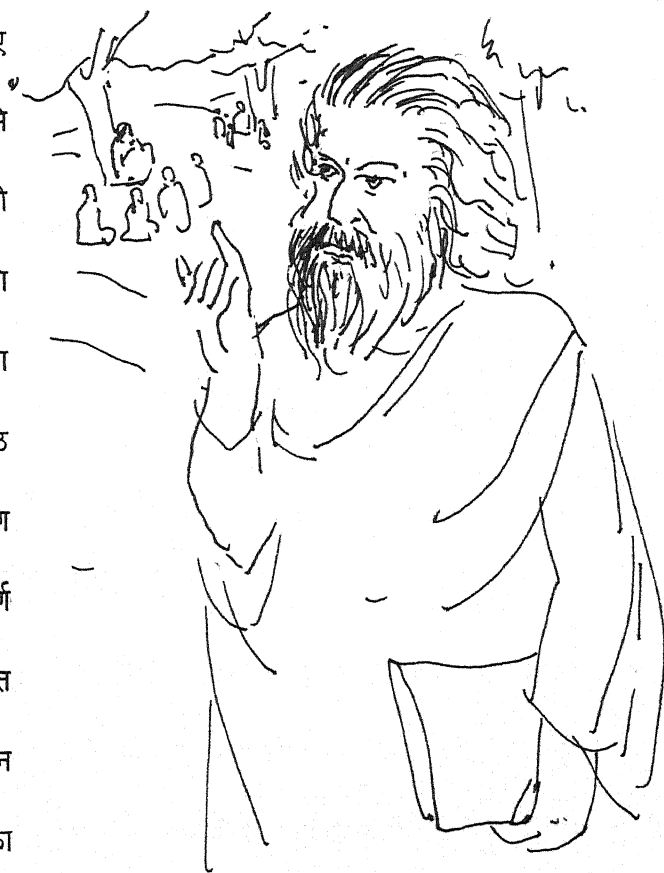
राज्य है और उसी के नागरिक बनने की कोशिश करना ही जिन्दगी का सही रास्ता है, जहाँ सूर्योदय व सूर्यास्त और सितारों को किसी दिन भी अनदेखा नहीं किया जाता हो, जहाँ प्रकृति के फूल और फलों के उत्सव में मनुष्य आनन्द के साथ हिस्सा लेता हो और जहाँ बच्चे और बूढ़े, गुरु और छात्र, सभी अपने रोजाना के भोजन और अपने अनन्त जीवन के भोजन का पान एक साथ एक ही आसन पर बैठकर करते हों। "हमारे रोजाना जीवन को ऊपर उठाने में वे आदर्श हमारी मदद करें जो "हमारे प्राचीन सांस्कृतिक शिखर से निकल कर हिन्दोस्तान की आत्मा के भीतर ही भीतर बहते हुए आये हैं। जो आदर्श सादगी, आध्यात्मिक दृष्टि में स्पष्टता, हृदय की स्वच्छता, सामाजिक संतुलन और व्यक्तित्व को चेतना प्रदान कराते हों।"

रवीन्द्र नाथ ठाकुर के शैक्षणिक विचार बिल्कुल सीधे और सादे थे। इसका खास कारण यही है कि उनमें सर्वव्यापी एकता का गहरा भान था। उनकी शिक्षा में संकीर्ण विशेषता का बिल्कुल भी स्थान नहीं था। क्योंकि उससे ऊपर कही गयी एकता और सम्पूर्णता की प्राप्ति में रुकावट आती है। मैं जैसा समझ पाया हूँ, विश्वभारती का उद्देश्य अधोलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है।

(अ) विद्यार्थी को समाज के अलग-अलग कार्यों के लिए तैयार करना।

(आ) ज्ञान के क्षेत्र को बढ़ाना।

विश्वभारती इन दोनों कार्यों को तो करेगी ही, किन्तु उसके पीछे और भी दो बातें हैं -

1. उसे अपने विद्यार्थियों को उदार - शिक्षा देनी चाहिए और
2. उन्हें शुद्ध जीवन बिताने की ओर प्रेरित करना चाहिए।

इन चार बातों में से पहली दो तो करीब-करीब सभी विश्वविद्यालयों में हो रही है। समाज के अलग-अलग कामों को सिखाने का काम आज अन्य संस्थान भी कर रहे हैं। शोध की जिम्मेदारी विश्वविद्यालयों से बाहर निकल कर अधिक समृद्ध राष्ट्रीय और औद्योगिक प्रयोगशालाओं में पहुँचती जा

रही है किन्तु जो सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मैं समझता हूँ विश्वविद्यालय की होनी चाहिए उस पर "विशेषज्ञता" के दबाव के कारण दुनियां की सारी युनिवर्सिटियों में ही कम ध्यान दिया जा रहा है। वह है उदार-शिक्षा देने की जिम्मेदारी। यदि वह पूरी नहीं होती है तो पहली दो बातें हमारे सामाजिक जीवन के गुणात्मक स्तर को गिरा देंगी। जब राज्य का कारोबार थोड़े ही लोगों के हाथ में होता है तो थोड़े लोगों के ही ज्ञानी होने से काम चल जाता है। पर जब सारी जनता ही राज्यकर्ता होती है तो किसी हालत में भी जनता अशिक्षित रहने पर राज्य व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती। लड़कियों की शिक्षा में उनका नामांकन और स्कूलों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि के होते हुए भी उसके आशातीत परिणाम सामने अभी नहीं आये हैं।

विज्ञान के विकास के साथ-साथ बढ़ती हुई जानकारी के कारण विशेषज्ञतावाद से छुटकारा पाना मुश्किल हो गया है किन्तु विशेषज्ञता ही यदि हमारा ध्येय हो जाए तो हमारी मानतवा खतरे में पड़ जायेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति विशेषज्ञ होने से पहले उसे समय के जीवनावश्यक मार्मिक विचारों से परिचित कराया जाय। इससे वह ऐसे बर्बर वैज्ञानिक या विच्छिन्न ज्ञानी होने से बच जायेगा जो कम से कम चीजों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानता होगा और उन सबसे, जो उसी की तरह के हैं और जिनको सामूहिकता के आदर्शों का अभाव है, अलग पड़ जायेगा। तीन हजार वर्ष पहले एक चीनी दार्शनिक ने कहा था "मैं उस मेढक को सागर की बात कैसे बताऊँ जिसने अपनी तलैया कभी नहीं छोड़ी

हो। मैं उस गर्म देश की चिड़िया को कोहरे की बात कैसे बताऊँ जिसने अपना देश कभी नहीं छोड़ा हो। मैं, उस मुनि से जिन्दगी की बातें कैसे कर सकता हूँ, जो अपने विचारों का ही कैदी है। नामांकन संख्या तभी अधिक होगी जब माता-पिता या अभिभावकों को जागरुक कर दें। यह सब नीतिगत और समाजगत आन्दोलन का मार्ग बने तभी सम्भव हो सकता है।

चौथा उद्देश्य है शुद्ध जीवन के लए प्रेरणा देने का। कोई तो यह भी कह सकता है कि इन ज्ञानियों को जीवन की मामूली बातों को बताने की क्या जरुरत। पर यह कहना बिल्कुल अज्ञान ही दिखायेगा, क्योंकि असलियत यह है कि इस प्रकार के ज्ञान के भार से आमतौर पर अच्छा जीवन बिताने का और समस्याओं का ठीक हल निकाल लेने का गुण ओझल हो जाता है, जबकि सीधे-सादे लोगों में वह ज्यादा पाया जाता है।

पुरानी शिक्षा पद्धति में धार्मिक बुनियाद के कारण व्यक्तियों में वह गुण विकसित होता था। पश्चिमी देशों में दर्शनशास्त्र के अध्ययन का रुख भी यही था। किन्तु आज विशेषज्ञतावाद के कारण परिस्थिति काफी बदल गयी है। विश्वविद्यालय यह मानने लगे हैं कि धर्म और अध्यात्म का समय खत्म हो गया है और अब तो विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान का ही युग है। इस दृष्टि के कारण विज्ञान मानवीय मूल्यों से और उनके आधार पर ज्ञात पदार्थों का मूल्यांकन करने से हट जाता है। यह एक ऐसा दर्शनशास्त्र है जो नैतिकता से विहीन है। ऐसी हालत में विज्ञान भले-बुरे दोनों का बन्धु बन जाता है और सुधाने व बिगड़ने दोनों का काम करता है।

आजकल लड़कियों की शिक्षा मार्गदर्शन करने की शक्ति नहीं रखती। जानकारी प्राप्त करने की दौड़ में वह मानवीय मूल्यों को भूल गई है। वह दृष्टि बदली चाहिए। विद्यालयों में जीवन-मूल्यों के विषय पर चर्चा समालोचना आदि करने में प्रोत्साहन देने का साहस होना चाहिए। उसे विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय करना चाहिए, जिससे कि जीवन के ध्येय छात्रों व छात्राओं के सामने स्पष्ट हो और वह उन्हें पाने के लिए प्रेरित हो सकें। स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में इसे आन्दोलन का रुप नहीं दिया गया। अब इस ओर जागरुकता बढ़ी है जिससे सुधार दिखाई देने लगा है। लड़कियों में

रुचि भी पैदा हुई है व चेतना आई है। सामाजिक दबाव से मुक्ति भी मिली है।

4. लड़कियों की शिक्षा पर व्यय :

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी केवल राजनीतिक नेता नहीं थे अपितु एक बड़े समाज सुधारक एवं धर्म तथा दर्शन के ज्ञाता था। उन्होंने अपने समय की पुस्तकीय, सैद्धान्तिक, संकुचित और परीक्षा प्रधान शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये थे और अन्त में 1937 में एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना प्रस्तुत की थी जिसे बेसिक शिक्षा कहते हैं। यह योजना भारत के आम आदमियों की मूलभूत आवश्यकताओं को सामने रखकर बनाई गयी थी। यह हमें हमारी मूलभूत आवश्यकताओं को सामने रखकर बनाई गयी थी। यह हमें हमारी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार करती है। उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में गाँधी जी ने विशेष रूप से कुछ नहीं कहा है। यहाँ उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का सार संक्षेप में प्रस्तुत है। समस्त देश व प्रदेशों में शिक्षा व्यय इतना कम है कि उचित साधनों का जुटाना असम्भव सा हो जाता है फिर भी महिला शिक्षा तो एक ऐसा पर्याय बन गया है जिसमें व्यवहारिक रुप में बहुत कुछ अच्छे परिणाम सामने आये हैं।

गाँधी जी के विचार से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति को उन्होंने बड़े व्यापक अर्थ में लिया है। वे पहले शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति की बात करते थे और फिर आत्मिक मुक्ति की। उनका तर्क था कि जब तक मनुष्य को शारीरिक दुर्बलता, मानसिक दासता, आर्थिक अभाव और राजनीतिक गुलामी से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक वह आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता। यही कारण है कि वे शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का उच्चतम

विकास करना चाहते थे।

5. लड़कों की शिक्षा से तुलना :

लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा की प्रगति लड़कों के सामने इतनी कम है कि उनका बौद्धिक, शारीरिक, आत्मिक और सांस्कृतिक विकास बंधनों से मुक्ति नहीं हो पाता। लड़के पैदल चलकर दूर स्थानों पर जाकर शिक्षा पा लेते हैं। माता-पिता भी इसमें किसी भी प्रकार की परेशानी महसूस नहीं करते हैं जबकि लड़कियों की सुरक्षा और उनके लिये साधन जुटाना मुश्किल हो जाता है। पिछड़े इलाकों में यह कार्य नग्न स्थिति का द्योतक हो जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का स्तर भी बिल्कुल पुरानी पद्धति के अनुसार चलाया जा रहा है। वहाँ अच्छे शिक्षक, सामग्री और साधनों का अभाव रहता है। यही कारणहै कि प्रगति की रफतार तेज नहीं हो पाती है।

पूर्वी जिलों में जब भी प्राथमिक विद्यालय लड़कियों के लिए खोले जाते हैं, उनमें दुर्व्यवहार व शैक्षिक वातावरण का बोलबाला बना रहता है। कुछ सांसद और विधायक या फिर ग्रामीण कुछ प्रभावी नेता उनमें व्यक्तिगत रूप से अपना हस्तक्षेप करने लगते हैं। उनके ये अड्डे बन जाते हैं। अच्छी शिक्षिकायें वहाँ नहीं रुक पातीं। सरकार की नीतियाँ अच्छी हैं पर उनका अमल अच्छा नहीं हो पा रहा है। अपेक्षाकृत बालकों के विद्यालय इस सबसे मुक्त रहते हैं।

हमें यह सोचना है कि लड़कियों के इस पक्ष को कैसे आगे बढ़ायें। व्यय व बचत का सही आंकलन और शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति और अभिभावकों की पुकार सुनकर सभी निर्णय क्षेत्रीय परिस्थिति के अनुरूप लेने चाहिए तभी कुछ प्रकाश इस ओर दिखाई देगा। स्वतंत्रता के बाद लड़कियों की शिक्षा का प्रतिशत बढ़ा अवश्य है और निरक्षरता के प्रति आन्दोलनों का प्रभाव भी पड़ा है पर आशातीत उन्नति नहीं हुई है। हमें इस ओर अभी बहुत कुछ करना है। तभी समाज में लड़कियों की स्थिति सुधारने की शहरी सभ्यता और ग्रामीण सभ्यता अभी भी जीवन के दो पाटों में बंटी है। उसे कम करना होगा जिसमें समाज और सरकार का उत्तरदायित्व बराबर माना जाना चाहिए।

गाँधी जी के अनुसार शरीर के साथ मन और आत्मा का भी विकास होना चाहिए। उसका कहना था कि जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए माँ के दूध की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा को यह कार्य अवश्य करना चाहिए।

गाँधी जी चरित्र बल के महत्व को जानते थे। वे शिक्षा द्वारा इसके विकास पर बल देते थे। एक उत्तम चरित्र में वे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह और निर्भयता - इन गुणों का होना आवश्यक समझते थे। विद्यालयों को वे चरित्र निर्माण की उद्योगशाला कहा करते थे। चरित्र निर्माण के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि सभी ज्ञान का उद्देश्य उत्तम चरित्र का निर्माण होना चाहिए।

गाँधी जी व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के विकास पर बल देते थे। आत्मिक विकास वैयष्टिक विकास की कोटि में ही आता है। पर यह तब तक सम्भव नहीं होता जब तक मनुष्य का सामाजिक विकास नहीं हो पाता। अतः शिक्षा के द्वारा इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति करनी चाहिए। इसके साथ-साथ गाँधी जी मनुष्य के सांस्कृतिक विकास पर भी बल देते थे। उनके अनुसार संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से होता है और वह मनुष्य के व्यवहार में प्रकट होती है । वे मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने और उसकी आत्मा के विकास के लिए उसके सांस्कृतिक विकास की आवश्यकता समझते थे और इसे शिक्षा का एक उद्देश्य मानते थे।

आर्थिक अभाव से मुक्ति पाने के लिए गाँधी जी शिक्षा के व्यावसायिक उद्देश्य पर बल देते थे। वे

प्रत्येक मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे और इसके लिए उसे किसी हस्त-कौशल अथवा उद्योग की शिक्षा देने पर बल देते थे।

गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य, मुक्ति, आत्मानुभूति, आत्मज्ञान अथवा आत्मबोध है। जिन शारीरिक, मानसिक,चारित्रिक, व्यष्टिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक विकास की हमने ऊपर चर्चा की है, इन सबका अन्तिम उद्देश्य भी मनुष्य को आत्म-ज्ञान करने में सहायता करना है। इसके लिए गाँधी जी की धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की भी आवश्यकता समझते थे। इस सम्बन्ध में गाँधी जी गीता से प्रभावित हैं। वे ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग इन सब पर समान बल देते थे। अहिंसा और सत्याग्रह को ये इनका मूर्त रुप मानते थे।
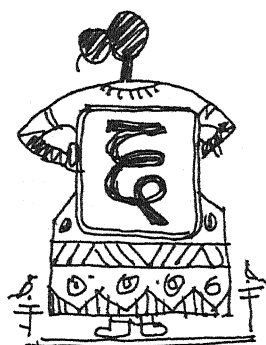
लड़कियों की पूर्व माध्यमिक शिक्षा की प्रगति

****

"हम भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समता प्राप्त करने के लिए उन सबमें व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित कराने वाली बन्धता के हेतु, दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मप्रिय करते हैं।"

भारतीय संविधान में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता की प्राप्ति द्वारा लोकतंत्रात्मक गणराज्य स्थापित करने का संकल्प किया गया है। इन्हीं आदर्शों को ध्यान में रखकर विद्यालय शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य बताए -

1. **शासकीय नीति :**

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में बहुत भारी परिवर्तन हो चुका है। इसीलिए हमारे विद्यालयों के कार्य और उत्तरदायित्व बढ़ गए हैं। अब उन्हें ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए जो राजनीति, प्रशासन, व्यवसाय, उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्रों में नेतृत्व कर सकें।

पूर्व और पश्चिम के विचारकों द्वारा यह बात स्वीकार की गयी है कि समस्त शिक्षा का अभिप्राय ब्रह्माण्ड का सामंजस्यपूर्ण चित्र और जीवन का एकीकृत मार्ग प्रदान करना है। हमारे विद्यालयों को इस अभिप्राय को प्राप्त करने के लिए कार्य करना चाहिए। उन्हें नवयुवकों व युवतियों को यह बताना चाहिए कि संगठित और सम्बन्धित सूचनाओं के अभाव में मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। अतः विद्यालय को नवयुवकों में ज्ञान और वस्तुओं के बारे में बौद्धिक दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए।

विद्यालय समाज सुधार में महान योग दे सकते हैं। इसलिए उनका उद्देश्य ऐसे नेताओं का निर्माण करना होना चाहिए जो दूरदर्शी, बुद्धिमान और बौद्धिक साहसी हों।

विद्यालय सभ्यता के अंग होने चाहिए। अतः उन्हें सभ्यता के बौद्धिक अग्रदूत तैयार करने

चाहिए।

विद्यालयों को ऐसे विवेकी व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए, जो प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा का प्रसार कर सकें, ज्ञान की सदैव खोज कर सकें, मानव-जीवन का अर्थ और सार जान सकें, रोजगारों का प्रबन्ध कर सकें और देश तथा समाज के विभिन्न भौतिक अभावों की पूर्ति के लिए साधनों को जुटा सकें।

शिक्षा का उद्देश्य जीवन और ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय करना है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों में जो विषय पढ़ाए जायें, वे पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग होने चाहिए जिससे कि छात्रों के मस्तिष्क के विभिन्न तत्वों का संग्रह न हो, वरन् सब तत्वों का एक साँचे में समावेश हो जाय।

विद्यालयों को आधुनिक प्रगति के वशीभूत होकर अपनी सांस्कृतिक विरासत को नहीं भूलना चाहिए। यदि उन्होंने ऐसा किया, तो वे अपने दायित्वों को पूर्ण नहीं कर सकेंगे। उनका एक महत्वपूर्ण दायित्व यह है कि वे ऐसे नवयुवक तैयार करें, जो अपनी राष्ट्रीय विरासत को अपनाकर अपनी सर्वोत्तम योग्यता के अनुसार योगदान दें।

छात्रों व छात्राओं का आध्यात्मिक विकास करना विद्यालयों का एक अति महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

विद्यालय देश की सभ्यता और संस्कृति का पोषण करने वाले हैं। यदि हम सभ्य कहलाना चाहते हैं, तो हमें दुःखी और दरिद्र व्यक्तियों से सहानुभूति होनी चाहिए, महिलाओं का आदर करना चाहिए, शान्ति और स्वतंत्रता से प्रेम करना चाहिए, अत्याचार और अन्याय से घृणा करनी चाहिए। विद्यालय शिक्षा का उद्देश्य नवयुवकों व महिलाओं में इन भावनाओं को भरना होना चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के जन्मजात गुणों की खोज करना और प्रशिक्षण के द्वारा उनका विकास करना है। विद्यालयों को अपने विद्यार्थियों के प्रति इन दोनों कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

स्वस्थ मस्तिष्क का निवास स्वस्थ शरीर में होता है। अतः विद्यालयों को छात्रों के न केवल

मानसिक, वरन् शारीरिक विकास के प्रति भी ध्यान रहना चाहिए। शारीरिक शिक्षा छात्रों में अनुशासन, साहस, नेतृत्व और सामूहिक भावना को विकसित करेगी।

यदि शिक्षा व्यक्ति को "जीवन की कला" जानने का ज्ञान देना चाहती है, तो उसे छात्रों को बौद्धिक दूरदर्शिता, सौन्दर्यात्मक अनुभूति और प्रयोगात्मक शक्ति प्रदान करनी चाहिए। अतः विद्यालयों को अपने छात्रों के प्रति इस कर्तव्य का पालन करना चाहिए। वे इस कार्य को तभी कर सकते हैं, जब वे छात्रों की प्रकृति, समाज के मूल्यों का ज्ञान समग्र रूप से प्रदान करें।

साहित्य मानवीय भावनाओं को गम्भीर और व्यापक बनाता है। अतः विद्यालयों को भाषा और मातृभाषा के साहित्य को सामान्य शिक्षा में सर्वोच्च स्थान देना चाहिए। विद्यालयों के दार्शनिक अध्ययनों पर भी बल दिया जाना चाहिए, क्योंकि इनका जीवन के आचरणों और आदर्शों से बहुत गहरा सम्बन्ध है।

हम एक नई सभ्यता का - न कि कारखानों का, निर्माण कर रहे हैं। सभ्यता के गुण का आधार मनुष्यों का चरित्र है, न कि भौतिक साज-सज्जा और राजनैतिक तंत्र। अतः विद्यालयों को अपने छात्रों के चरित्र में सुधार करके उसे श्रेष्ठ और आदर्श बनाना चाहिए।

विद्यालयों का एक प्रमुख कर्तव्य सामाजिक मुक्ति में सहायता करना है। उन्हें यह कर्तव्य ऐसे नवयुवकों का निर्माण करके पूरा करना चाहिए, जो समाज में विभिन्नताओं के होते हुए भी सामाजिकता को बनाए रखे और समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करें।

विद्यालयों का एक महत्वपूर्ण कार्य है - राष्ट्रीय अनुशासन की स्थापना करना। अतः उनको छात्रों में इस अनुशासन की भावना का विकास करना चाहिए।

विद्यालय विश्व शान्ति में महान योग दे सकते हैं। अतः विद्यालयों को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के लिए कार्य करना चाहिए।

"हम न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता की प्राप्ति द्वारा प्रजातंत्र की खोज में संलग्न है। "अतः हमारे विद्यालयों को इन आदर्शों का प्रतीक और रक्षक होना चाहिए।

2. **लड़कियों के पूर्व माध्यमिक विद्यालय :**

विद्यालय शिक्षा के जो उद्देश्य प्रस्तुत किए हैं, वे देखने और सुनने में बड़े ही मधुर जान पड़ते हैं। पर वास्तव में वे यथार्थता से दूर आदर्शवाद पर आधारित हैं। विद्यालय शिक्षा के ये उद्देश्य इतने कठिन और व्यापक हैं कि इनकी प्राप्ति की असम्भव कहना अनुचित न होगा। समाज में केवल नेताओं की ही आवश्यकता नहीं होती है, वरन् नेताओं का अनुसरण करने वालों की भी। यदि आयोग के मतानुसार, समाज के सभी क्षेत्रों में छात्राओं के नेतृत्व के लिए तैयार कर दिया गया तो क्या ऐसी तैयारी के बाद वे किसी दूसरे के अधीन कार्य करना पसन्द करेंगे। निश्चित रुप से नहीं। ऐसी दशा में जब सभी छात्रायें नेतृत्व के लिए लालायित रहेंगी तो परिणाम क्या होगा। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, कटुता और वैमनस्य। फलतः समाज का रुप सुन्दर होने के बजाय विकृत हो जायेगा।

छात्राओं से तथा समाज, देश और संसार से बड़ी-बड़ी आशाएं प्रकट की हैं। शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे ज्ञान की खोज करें, मानव जीवन का सार जानें, राष्ट्रीय विरासत में योग दें, अपना आध्यात्मिक विकास करें, सभ्यता और संस्कृति का पोषण करें, सामाजिक एकता को बनाये रखें, आदि आदि। पर आयोग ने छात्रों की आशाओं की ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया है। आज के भौतिकवादी युग में उनकी सबसे बड़ी आवश्यकताएँ हैं - भोजन, मकान और वस्त्र। शिक्षा के उद्देश्यों में इस बात का संकेत भी

नहीं किया है कि अध्ययन के बाद छात्रों की ये आशाएं पूर्ण हों। इनके पूर्ण हुए बिना छात्र अपना और अपने देश का कोई भी हित न कर सकेंगे और न वे ऐसी शिक्षा की ओर ध्यान ही देंगे, जो उनको सत्य जगत से हटाकर झूठे आशीर्वाद की ओर ले जाय। यह जानकार उनके हर्ष की सीमा नहीं रही है कि भारत के किसी भी विद्यालय ने आयोग द्वारा बताये गए उद्देश्यों को अपनाने का प्रयास नहीं किया है। विद्यालयों ने ऐसा करके अपने विवेक और दूरदर्शिता का परिचय दिया है। वास्तविकता यह है कि वे जानते हैं कि उद्देश्य निराधार हैं और संसार के किसी भी प्रगतिशील विद्यालय या इनसे मिलते-जुलते उद्देश्य देखने को नहीं मिलते हैं।

3. **लड़कियों का नामांकन :**

लोकतंत्र जीवन की एक विधि है और शिक्षा मनुष्य को जीवन की किसी भी विधि में प्रशिक्षित करने का साधन है। लोकतंत्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है। लोकतंत्र व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों प्रकार के विकास पर समान बल देता है। उसके अनुसार शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य होने चाहिए -

लोकतंत्र व्यक्ति के व्यष्टिगत का आदर करता है और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि, रुझान, योग्यता एवं आवश्यकताओं के अनुकूल विकास करने के स्वतंत्र अवसर देता है। परन्तु किसी भी स्थिति में वह उसे पशुवत् व्यवहार करने और अपने समाज अथवा राज्य के प्रतिकूल आचरण करने की स्वतंत्रता नहीं देता। वह चाहता है कि

प्रत्येक व्यक्ति का शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर हो, उसकी बुद्धि का विकास हो, उसमें उच्च चरित्र का निर्माण हो और वह अपनी वैयष्टिक योग्यताओं का उच्चतम विकास कर उनका अधिकतम उपयोग करे जिससे उसका, समाज का और राष्ट्र का सभी का हित हो। इन्हीं को दूसरे शब्दों में शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं नैतिक विकास के उद्देश्य कहते हैं। इन उद्देश्यों को महत्व दिए बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। इनके द्वारा ही व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव है।

राजनैतिक क्षेत्र का लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक लोकतंत्र हमारे जीवन की विधि नहीं बन जाता। प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, सहनशीलता और त्याग लोकतंत्र जीवन के आधार हैं। लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके नागरिक कर्मशील, कर्तव्यपरायण और ईमानदार हों। अतः आज शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में इन सब गुणों का विकास होना चाहिए। इसे ही दूसरे शब्दों में सामाजिक विकास का उद्देश्य कहते हैं।

लोकतंत्रीय समाज एवं शासन को चलाने के लिए हमें स्वस्थ, योग्य एवं चरित्रवान नागरिकों की आवश्यकता होती है। इन नागरिकों को अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए और उनमें अपनी उच्चतम योग्यताओं का अधिकतम लाभ उठाने की क्षमता होनी चाहिए। हम उनसे यह भी आशा करते हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्र में नेतृत्व करें। लोकतंत्र की सफलता किसी एक व्यक्ति के विचारों के पीछे दौड़ने पर निर्भर नहीं करती अपितु हर व्यक्ति के स्वतंत्र चिन्तन एवं उसके द्वारा समाज का नेतृत्व करने पर निर्भर करती है। सरकार का निर्माण करने और सरकार चलाने के लिए भी नेतृत्व की आवश्यकता होती है। आज हम देख रहे हैं कि हमारे देश में चरित्रवान् एवं प्रभावशाली नेताओं का अभाव है। तभी तो देश की जनता भिन्न-भिन्न दिशाओं में भटक रही है। आज शिक्षा को अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए। इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियों की नामांकन संख्या धीरे-धीरे अब बढ़ रही है और विद्यालयों की संख्या भी बढ़ी है। दिनोंदिन इस ओर जागृति हुई है।

4. **लड़कियों की शिक्षा पर व्यय :**

लोकतंत्र राष्ट्र के प्राकृतिक साधनों एवं मानव शक्ति के अधिकतम प्रयोग में विश्वास करता है और इसके लिए राष्ट्र में औद्योगिक विकास पर बल देता है। यह तभी सम्भव है जब शिक्षा मनुष्य में व्यावसायिक कुशलता के विकास का उत्तरदायित्व सम्हाले। आज हमें स्वतंत्र हुए 44 वर्ष पूरे हो चुके हैं लेकिन हमारा देश आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है। आज भी हम अपनी छोटी-बड़ी प्रायः सभी आवश्यकताओं के लिए दूसरे देशों का मुँह ताकते हैं। विदेशों के ऋण से हम दबे जा रहे हैं। इस स्थिति से निकलने के लिए व्यावसायिक उन्नति आवश्यक है।

इस संदर्भ में राजनीतिक तत्वों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। एक ओर कुछ पड़ोसी देश हमारे देश पर आक्रमणकारी नीति अपनाये हुए हैं और दूसरी ओर अन्य बड़े राष्ट्र हमारे प्रति ईर्ष्या भाव रखते हैं। इस चुनौती का सामना करने के लिए हमें सबसे अधिक ध्यान उद्योग एवं उत्पादन पर देना होगा। इसके लिए शिक्षा को आगे आना चाहिए। उसके द्वारा बच्चों को श्रम का महत्व बताा जाना चाहिए और उन्हें उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने की शिक्षा देनी चाहिए। इससे हमारी आर्थिक समस का ही समाधान नहीं होगा अपितु हम जीवन के हर क्षेत्र में संघर्ष करने एवं विजय श्री प्राप्त करने योग्य बन जायेंगे। आज शिक्षा को इस उद्देश्य की प्राप्ति पर सबसे अधिक बल देना चाहिए। छात्राओं को आगे लाकर इस ओर अधिक प्रगति की सम्भावनायें बढ़ी है। व्यय भी अब सरकार अधिक करने लगी है।

लोकतंत्र मनुष्य और उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का आदर करता है और इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उसकी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण और विकास की स्वतंत्रता देता है। यह सभी सम्भव है जब शिक्षा द्वारा मनुष्य का सांस्कृतिक विकास किया जाए। इस प्रकार लोकतंत्र परोक्ष रूप में सांस्कृतिक विकास पर भी बल देता है। हमारी संस्कृति में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तत्वों को समान स्थान दिया गया है। वेदों में भौतिक और आध्यात्मिक प्राप्ति करने के लिए देवताओं से प्रार्थनाएं की गई हैं परन्तु अफसोस, हम अपनी आधारभूत संस्कृति को छोड़कर कभी कोरे आदर्शों के चक्कर में फँसे और कभी केवल भौतिकता की ओर बढ़े। आज भी हम देख रहे हैं कि हमारा देश पाश्चात्य-सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित होकर केवल भौतिकता के चक्कर में फँसा है। इस सन्दर्भ में हमें यह कहना है कि कहीं से भी कोई अच्छी बात लेने में हमें चूकना नहीं चाहिए। पर उसके आगे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को भूलना उचित नहीं है।

हमारा देश धर्म-प्रधान देश है। हम मनुष्य-मात्र के प्रति संवेदनशील हैं और पूरे संसार को एक कुटुम्ब समझते हैं। प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा और सहनशीलता आदि सामाजिक गुणों की प्राप्ति के लिए हम सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। अतिथि-सत्कार एवं शरणागत की रक्षा हमारी परम्परागत विशेषताएं हैं परन्तु आज हम अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं और पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग कर केवल भौतिक की प्राप्ति करने की ओर बढ़ रहे हैं और देश में चारो ओर प्रेम, ईर्ष्या, असहयोग, शोषण, भ्रष्टाचार एवं पापाचार का बोलबाला हो रहा है। हमारा सामाजिक, आर्थिक एवं सामाजिक सभी प्रकार का जीवन कष्टमय हो गया है। यदि हम सबसे बचना चाहते हैं तो हमें अपनी संस्कृति की सुरक्षा करनी चाहिए और आवश्यकतानुसार उसमें विकास करना चाहिए। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। लड़कियों की शिक्षा का भार अब सरकार ने इस स्तर तक उठाना आरम्भ कर दिया है। अतः इसके अच्छे परिणाम निकलने की सम्भावनायें बनी हैं।

5. लड़कों की शिक्षा से तुलना :

लोकतंत्र मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करता। रजत, रंग, धर्म, सामाजिक स्तर एवं अर्थ आदि के आधार पर किए गए वर्ग भेद का यह विरोध करता है। इस भावना का विकास तभी सम्भव है जब भावात्मक एकता का विकास किया जाए। यहाँ यह बात दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि हमारी संस्कृति हमें वसुधैव कुटुम्बकम का पाठ पढ़ाती है। हमने मनुष्य एवं प्राणी मात्र को ही नहीं, अपितु संसार के प्रत्येक कण को ईश्वर के अंश के रुप में स्वीकार किया है। पर अफसोस आज हम जाति, धर्म, अर्थ और न जाने कितने आधारों पर एक-दूसरे से अलग हो गए हैं। सब स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए हैं। किसी को किसी की चिन्ता नहीं है। ऐसी स्थिति में हम व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र किसी की भी प्रगति की बात नहीं सोच सकते। अतः आज शिक्षा को देश में भावात्मक एकता का विकास करना चाहिए। इसके लिए हमें धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का विधान करना होगा और देश के नागरिकों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित करना होगा।

यह बात सत्य है कि लोकतंत्र व्यक्ति के व्यष्टित्व का आदर करता है परन्तु यह सब वह राष्ट्र हित की दृष्टि से ही करता है। वह व्यक्ति की उच्चतम योग्यताओं का अधिकतम प्रयोग करना चाहता है और इस प्रकार व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों का हित करता है। वह व्यक्ति में सामाजिकता की भावना का विकास कर उसे राष्ट्र हित के लिए तैयार करता है। यह तभी सम्भव है जब देश में राष्ट्रीय एकता हो। लोकतंत्र राष्ट्रीय एकता के लिए सजग रहता है। हमारे देश में विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं, उनके धर्म भी अलग-अलग हैं। इस

सबके कारण हम दूसरे से इतने अलग - अलग रहते हैं कि इस राष्ट्र में रहते हुए कुछ लोग इस राष्ट्र के हित की बात भी नहीं सोचते। जब तक देश का प्रत्येक नागरिक अपने को इस देश का नागरिक स्वीकार नहीं करेगा, प्रत्येक नागरिक की सुख-सुविधा का ध्यान नहीं रखेगा और राष्ट्र हित के आगे अपने हित का त्याग नहीं करेगा तब तक देश किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सकता। यूँ तो चारित्रिक विकास, सामाजिक विकास एवं भावात्मक एकता की प्राप्ति करते समय इस उद्देश्य की प्राप्ति हो ही जाती है, फिर भी राष्ट्र की दृष्टि से इसे अलग स्थान देना अनुचित नहीं होगा। इसके लिए बच्चों को राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत एवं राष्ट्रभाषा का सम्मान करना सिखाना होगा, उन्हें राष्ट्रीय पर्वों को बनाने की ओर अग्रसर करना होगा और स्वतंत्रता के महत्व को बताकर उसकी रक्षा के लिए उन्हें तत्पर करना होगा।

लोकतंत्र सह-अस्तित्व में विश्वास रखता है। वह किसी भी झगड़े का निपटारा विचार-विमर्श द्वारा करना चाहता है। युद्धों में उसका विश्वास नहीं होता। इसके साथ-साथ आज विज्ञान ने समय और स्थान की दूरी कम कर दी है। आज सारा संसार एक हो गया है। आज कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों से अलग रहकर जीवित नहीं रह सकता। इसलिए आज हममें राष्ट्रीय भावना तो होनी चाहिए पर राष्ट्रीय संकीर्णता नहीं। हमें दूसरे राष्ट्रों के भी हित का ध्यान अवय रखना चाहिए। इसको राजनीतिक भाषा में अन्तर्राष्ट्रीयता कहते हैं । आज हमें शिक्षा के द्वारा बच्चों को यह दृष्टिकोण अवश्य प्रदान करना चाहिए।

हमारी संस्कृति हमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" (सारा संसार एक कुटुम्ब है) का पाठ पढ़ाती हैं। राजनीतिक भाषा में इसी को अन्तर्राष्ट्रीयता कहा जाता है। सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ इस उद्देश्य की प्राप्ति होती ही है पर राजनीतिक दृष्टि से इसकी प्राप्ति के लिए राजनीतिक आधारों को और चुना जाता है, जैसे देश-विदेश के झण्डों का सम्मान, देश-विदेश के राष्ट्रीय गीतों का सम्मान, अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं का सम्मान एवं ज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय पर्वों का मानना, देश-विदेश की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान एवं उनका आदर। शिक्षा को इस कार्य को पूरा करने में पीछे नहीं रहना चाहिए।

समाज व्यक्तियों से बनता है। इन व्यक्तियों के परस्पर सम्पर्क में से ही क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। जिससे परिवर्तन का जन्म होता है। इस प्रकार हमारे जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं। कोई भी व्यक्ति दो अवसरों पर एक जैसी प्रतिक्रिया नहीं करते। उनके हर सम्पर्क या सम्बन्ध में कुछ बदल, कुछ नवीनता रहती है। इस बदलाव को सामाजिक बदलाव कह सकते हैं। इससे हमारे समाज की गतिशीलता लक्षित होती है।

लेकिन सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी सरल नहीं है। यह बहुत जटिल प्रक्रिया है जिसका ध्यान से अध्ययन करना चाहिए। सच तो यह है कि समाज, सम्बन्धों का एक जटिल ढाँचा है जिसमें अलग-अलग लोग अलग ढंग से भाग लेते हैं। सम्बन्धों में परिवर्तन से व्यवहार भी बदल जाता है। हर दिन व्यक्ति के सामने नई स्थिति होती है। इसीलिए उनका व्यवहार भी नये ढंग का होता है। इसलिए सामाजिक व्यवहार में नये तरीके, नई जीवन पद्धति, नये विचारों का विकास और नये मूल्यों का सृजन होता रहता है।

शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन पर विचार से पहले, उस भारतीय समाज का ज्ञान जरुरी है जिसे परिवर्तित करना है। सामान्यतः समाज दो प्रकार का होता है। एक खुला समाज होता है जहाँ परिवर्तन तेजी से होते हैं। ऐसे समाज में लोगों की भूमिका व स्थान समय-समय पर बदलती रहती है। इन परिवर्तनों को वैवाहिक जीवन, सन्तानोत्पत्ति, शैक्षिक उपलब्धि, रोजगार, आय स्तर आदि से नापा जा सकता है। अतः खुला समाज गतिशीलत समाज होता है।
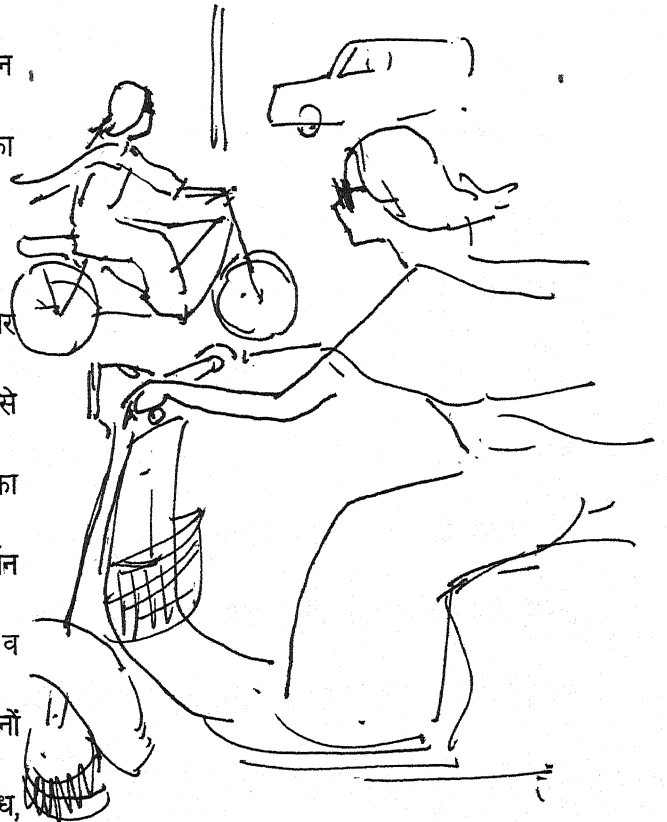
दूसरे ढंग का बन्द समाज होता है जो स्थिर रहता है। यहाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी व्यक्ति का महत्व और भूमिका वही बनी रहती है। जहाँ तक भारतीय समाज का सम्बन्ध है, वह अतीत में, खासकर 18वीं और 19वीं शताब्दी के मध्य तक भी बहुत कुछ स्थिर समाज था। 19वीं सदी की उत्तरार्द्ध में सामाजिक सुधारों ने इसे बहुत कुछ गतिमान बनाया। उन दिनों परम्परागत जातिगत पेशों में कुछ सुधार देखे गए थे। फिर भी पश्चिमी समाज की तुलना में भारतीय समाज 1947 तक बिल्कुल स्थिर, गतिहीन समाज था। उन दिनों परम्परागत जातिगत पेशे में कुछ सुधार देखे गए थे। फिर भी, पश्चिमी समाज की तुलना में भारतीय समाज 1947 तक बिल्कुल स्थिर, गतिहीन समाज था। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से तेजी से परिवर्तन के कुछ लक्षण भारतीय समाज में दिखने लगे, फिर भी इसे परिवर्तनशील समाज नहीं कहा जा सकता। इसके लिए परिवार नियोजन का उदाहरण पर्याप्त होगा। सरकारी प्रयासों और प्रचार के बावजूद भारत की जनसंख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है।

भारतीय समाज की एक और विशेषता यह है कि यह विभिन्न जातियों, धर्मों, आस्थाओं और संस्कृतियों का सम्मिश्रण है। अर्थात इसमें विभिन्नता में एकता है। यहाँ के लोग अलग-अलग भाषाएं बोलते हैं, विभिन्न आस्थाओं में विश्वास रखते हैं, उनके तौर-तरीके व रिवाज भी अलग-अलग हैं। फिर भी इस विविधता के नीचे एक एकता की धारा है। जैसे हम एक ही समय में कई काम करते हैं, कहीं क्रोध दिखाते हैं, तो दूसरी जगह प्रेम व स्नेह, फिर भी हम वहीं एक रहते हैं, उसी प्रकार हमारे समाज में भी कोई अन्तर्निहित धारा है जो भारतीय समाज को एक सूत्र में पिरोये रहती है। इसी एकता के कारण हमने अपने नेताओं के आह्वान पर मिलकर आजादी की लड़ाई लड़ी। तब हम अपने धर्म, जाति, भाषा आदि के भेद भूल गए थे। आजादी के बाद भी, जब देश पर पर हमला हुआ, हमारी जनता ने सदा एक होकर उसका मुकाबला किया।

इस अन्तर्निहित एकता के कारण आजादी के बाद भारत में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का काम शुरु हुआ। लोगों की शिक्षा के लिये नये-नये स्कूल, कालेज खुले, सामान बनाने के लिए फैक्ट्रियाँ बनीं,

उद्योग-धन्धे पनपे, सामाजिक सुधार पिछड़ों व दलितों के उद्धार का काम शुरु हुआ, पिछले 40 वर्षों से देश से गरीबी व अशिक्षा का अभिशाप मिटाने का प्रयास सतत जारी है। काफी प्रगति भी हुई है लेकिन अभी बहुत कुछ करना भी बाकी है। लेकिन दुर्भाग्य से इन दिनों विभिन्नता के तत्व अधिक प्रमुख बनने लगे हैं जिससे एकता को खतरा पैदा होने लगा है। इसीलिए देश की शान्ति व प्रगति में कई बाधाएं आने लगी हैं। सबसे बड़ी बाधा साम्प्रदायिकता की है, जातिवाद, क्षेत्रवाद व भाषावाद की है। कई ऐसे संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग भी हैं जो धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाते हैं और देश की शान्ति व सद्‌भावना को नुकसान पहुँचाते हैं। कुछ लोग केवल अपने ही राज्य का भला चाहते हैं व सारे देश के हितों की अनदेखी कर देते हैं। कुछ अपनी ही क्षेत्रीय भाषा को अनावश्यक तूल देते हैं व राष्ट्रीय भाषा की उपेक्षा कर देते हैं। कुछ लोग संकीर्ण जातिवाद के नाम पर व्यापक राष्ट्रीय हितों को छोड़ देते हैं।

भारतीय समाज की इन विशेषताओं के कारण इसका परिवर्तन बहुत जटिल और बड़ा काम है। परिवर्तन के लिए कई पहलू-तकनीकी, औद्योगिक, धार्मिक व वैचारिक पक्ष जिम्मेदार होते हैं। साथ ही भौगोलिक, वातावरण, नये पर्यावरण में प्रवेश, विभिन्न संस्कृतियों में आदान-प्रदान व प्राकृतिक विपदाओं आदि से भी परिवर्तन सम्भव होता है। लेकिन सम्भवतः सबसे प्रभावी और शक्तिशाली माध्यम शिक्षा ही है। शिक्षा से ही समाज में वांछित परिवर्तन और जनता के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

शिक्षा का अर्थ है अनुभव से लाभ उठाना। शिक्षा अनुभव का ही दूसरा नाम है। जब हम बच्चों की शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा अर्थ उसे ऐसे अनुभव देने से होता है जिनसे बच्चे का

शारीरिक, मानसिक, प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हो सके। अतः शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग है। इससे उन्हें समाज का अच्छा नागरिक बनने में भी मदद मिलती है।

भारत में अब तक शिक्षा में बहुत अव्यवस्था रही है। वह अपने वांछित लाभ पूरे नहीं कर पाई। इसका मुख्य कारण यह था कि उसके लिए कोई योजना नहीं बनाई गई, उसे भारतीय समाज की तात्कालिक परिस्थितियों से नहीं जोड़ा गया था। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दस्तावेज की प्रस्तावना ीय कहा गया है कि "आज राष्ट्रीय एकता व कुछ राष्ट्रीय मूल्यों व मान्यताओं में आस्था की जरुरत पहले से कहीं अधिक है। इसके लिए धर्म निरपेक्ष, वैज्ञानिक व नैतिक मूल्यों का पालन करने व हमारी मिश्रित संस्कृति को समझने व पर्यावरण की रक्षा तथा छोटे परिवार की महत्ता को समझने की जरुरत है।"

हमारे वर्तमान समाज में अनेक विकृतियाँ कट्टरपन, अंधविश्वास, अज्ञानता, पिछड़ापन आदि आ गयी है। इन सबका मूल कारण अशिक्षा है। आज का संसार तेजी से विकसित हो रहा है। विकसित देशों ने ही तेजी से प्रगति की है। अगर हमें उनके साथ चलना है तो हमें भी आधुनिक बनना है और इन विकृतियों को दूर करके समाज को तकनीकी विकास व वैज्ञानिक सोच की ओर ले जाना होगा।

आधुनिकता से किसी देश, समाज की भौतिक स्थिति ही नहीं, बदल जाती बल्कि उसके मूल्य व जीवन ढंग भी बदल जाते हैं। समाज पीछे की बजाय आगे की ओर देखने लगता है। तब समाज विज्ञान तकनीकी खोज का पूरा लाभ उठा सकता है। तभी वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सामाजिक लाभ के लिए कर सकता है। वह सांस्कृतिक विरासत का महत्व तो समझता है लेकिन पुरानी बेड़ियों में जकड़ा नहीं रहता। लेकिन आधुनिकता में हम वहाँ दूसरों से काफी कुछ सीखते हैं, वहाँ उनकी अंध नकल नहीं करते। यह वह प्रक्रिया है जिसमें समाज आगे बढ़ते हुए भी अपनी पहचान बनाये रखता है।

आधुनिकता एक प्रकार से मानव का दृष्टिकोण बदलने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यह जानते हुए भी कि आदमी चाँद तक पहुँच चुका है, कोई अगर चन्द्रमा को देवता मानकर उसकी पूजा

करता रहे तो उसे आधुनिक नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर अगर कोई देहाती भी दूरदर्शन पर परिवार नियोजन कार्यक्रम देखकर यह समझ सके कि बच्चे सिर्फ भगवान की ही देन नहीं है और वह अपना परिवार छोटा रखे तो उसे आधुनिक कहा जायेगा। इस नजरिये को बदलने में शिक्षा की महान भूमिका है।

आज के संसार में विज्ञान व तकनीकी जानकारी के बिना नहीं रहा जा सकता। हमारे भारतीय समाज पर कला संस्कृति और धर्म का गहरा असर है। इसके स्थान पर विज्ञान को प्रमुखता देने की आवश्यकता है। विज्ञान सत्य की खोज है और उस खोज के लिए वैज्ञानिक नजरिया जरुरी है। इसके लिए भी शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हमें नयी तकनीकें अपनाने की भी अति आवश्यकता है। तकनीक का अर्थ केवल औद्योगिक कला ही नहीं, बल्कि हर काम को व्यवस्थित और वैधानिक ढंग से करना है। हर रोज नये तरीके व उपाय खोजे जा रहे हैं। जीवन में इनका उपयोग करके बेहतर परिणाम किए जा सकते हैं। यह शिक्षा से ही सम्भव है।

आज हमारे समाज में समाज विरोधी व अराष्ट्रीय तत्व इतना सिर उठा रहे हैं कि हमारे देश की एकता व अखण्डता को खतरा पैदा होने लगा है। हर रोज सड़कों पर जातीय या साम्प्रदायिक नारे लगते हैं, या भाषा और क्षेत्र के नाम पर आन्दोलन व घेराव होते हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान

तो आम बात बन गयी है। इससे देश की शान्ति नष्ट होती है, अराजकता पनपती है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है जो शिक्षा से ही पूरी हो सकती है।

स्कूलों में "सर्वधर्म प्रार्थनायें" आयोजित करके, सामूहिक गतिविधियाँ शुरु करके, पिकनिक व स्कूल भोज आयोजित करके बच्चों में राष्ट्रीय एकता के बीज शुरु से ही बोए जा सकते हैं। स्कूल की गणवेश व सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यक्रम भी इसमें सहायक हो सकते हैं। आज देश में राष्ट्रीय चरित्र का भी अभाव है। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, ब्लैक मेलिंग, बेईमानी व स्वार्थ आज के फैशन बन गये हैं। अनुशासनहीनता, आज्ञा न मानना व विनाशकारी कामों में लगे रहना हमारे छात्र समुदाय में व्याप्त हो गया है। अतः राष्ट्रीय चरित्र निर्माण पर बल देना भी सामाजिक परिवत्रन के लिए जरुरी है।

इसमें शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। बच्चे तो कोमल होते हैं, इसी आयु में पड़े संस्कार ही आगे चलकर आदत व प्रकृति बनते हैं। इसी उम्र में उनमें सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम, सहनशीलता आदि गुणों का विकास का प्रयास करना चाहिए। इसी से उनका चरित्र विकसित होगा। आज के बच्चे ही कल के नागरिक बनेंगे। जो देश की जिम्मेदारी सँभालेंगे। इसलिए नयी पीढ़ी का चरित्र निर्माण आज की शिक्षा का मुख्य उद्‌देश्य होना चाहिए।

सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाने के लिए शिक्षा को एक नये पहलू से देखना होगा। तब शिक्षा न केवल शिक्षकों, अभिभावकों व छात्रों की ही चिन्ता का विषय रहेगी, बल्कि पूरा समाज इसमें गहरी रुचि लेगा। शिक्षकों के लिए तब यह केवल रोजगार और पेशा नहीं रहेगा, बल्कि एक धर्म कर्तव्य बन जायेगा। अभिभावक भी घरों में बच्चों में अच्छी आदतों की नींव डालेंगे और स्कूलों में उनके व्यवहार पर निगाह रखेंगे। बच्चे भी अपने दिल-दिमाग और हाथों का इस्तेमाल यह सोंचकर करेंगे कि ईश्वर ने उन्हें वह शक्तियाँ दूसरों की मदद व भलाई के लिए दी है, विनाश व स्वार्थ वृद्धि के लिए ही नहीं।

तब शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति के साधन नहीं अपितु आत्मज्ञान चरित्र-निर्माण और भावी नागरिक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का माध्यम बन जायेगी। सवाल यह है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक

बदलाव कैसे लाया जाये। क्या हमें अपने पाठ्यक्रमों में ऐसा संशोधन करना होगा जिससे छात्रों में मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित हो सके। या हमें पढ़ाने के तरीके बदलने पड़ेंगे और सीखने की क्रिया को अधिक रोचक बनाना पड़ेगा। क्या हमें शिक्षा को अधिक अनौपचारिक बनाना होगा। क्या परीक्षा प्रणाली को छोड़ देना चाहिए। क्या स्कूलों के बच्चों की सभी प्रकार की गतिविधियों का केन्द्र बना देना ठीक होगा। हमारे शिक्षा संस्थानों की आज जो हालत है, उसमें क्या यह सब कर पाना सम्भव होगा।

ये ऐसी कुछ समस्याएं हैं जिन पर लोगों में अलग अलग राय है। इसलिए बुद्धिजीवियों और शिक्षाशास्त्रियों का यह दायित्व है कि वे इन महत्वपूर्ण विषयों पर गम्भीर चिन्तन एवं मनन करें तथा उनका स्वीकार्य और व्यवहारिक हल निकालें। जिससे लड़कियों की शिक्षा प्रगति कर सके। लड़कियाँ देश का भविष्य हैं। उन्हें समाज में सक्रिय भूमिका निभानी है जिससे शुभावसर प्राप्त हो सके। अपने दायित्वों व अधिकारों को समझ सकें। यही कारण है कि आज लड़कियों में ज्यादा लगन, मेहनत और स्वावलम्बी बनने की प्रवृत्ति पाई जा रही है। अपेक्षाकृत लड़कों में यह कम है। अब स्वतंत्रता के पश्चात् लड़कियों में जाग्रति है और पढ़ने-लिखने में समय, मेहनत और आवश्यक पक्ष मानकर चल रहा है। भविष्य की अच्छी आशायें बनी हैं।
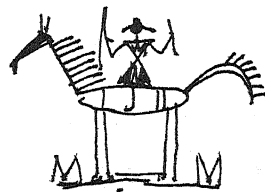
तालिका

उत्तर प्रदेश के सेवायोजन कार्यालयों द्वारा सम्पादित कार्यों का विवरण वर्ष 1990

क्रमांक	कार्यालय का नाम	पंजीयन	काम पर लगाए गए	सक्रिय पंजीयन	अधिसूचित रिक्त स्थान
1.	कानपुर	44902	3238	264472	5001
2.	कानपुर (यू0ई0बी0)	748	72	3309	-
3.	इटावा	13480	388	55001	480
4.	फतेहगढ़	8118	82	34636	141
5.	उन्नाव	8001	143	31482	119
6.	आगरा	19449	465	102664	950
7.	आगरा (यू0ई0बी0)	482	10	2147	-
8.	अलीगढ़ (यू.ई.बी.)	181	3	792	-
9.	अलीगढ़	9156	177	42915	261
10.	मथुरा	12145	319	51063	566
11.	एटा	5239	183	22188	324
12.	मैनपुरी	5810	197	23313	238
13.	हाथरस	2161	93	10223	122
14.	फिरोजाबाद	14454	366	26373	437
15.	इलाहाबाद	35056	196	188316	545
16.	इलाहाबाद(यू.ई.बी.)	406	12	1598	-
17.	फतेहपुर	10007	76	37411	170
18.	सुल्तानपुर	6007	82	27633	95
19.	प्रतापगढ़	5111	51	26376	78
20.	कुण्डा	1370	34	9313	73
21.	जगदीशपुर	959	15	6427	23
22.	वाराणसी	26595	296	83301	559
23.	वाराणसी (यू.ई.बी.)	483	20	2089	-

24.	काशी विद्यापीठ	178	1	845	-
25.	जौनपुर	9153	64	38448	98
26.	मिर्जापुर	6338	42	29074	56
27.	गाजीपुर	8883	124	37947	142
28.	बलिया	9066	51	33939	68
29.	मुगलसराय	4415	35	18759	50
30.	सोनभद्र	11884	285	37915	208
31.	दुद्धी	1140	121	3724	-
32.	अल्मोड़ा	5148	148	21032	208
33.	नैनीताल	6065	396	25723	769
34.	नैनीताल(यू.ई.बी.)	68	1	349	1
35.	पिथौरागढ़	4722	225	16127	279
36.	हल्द्वानी	3960	239	14512	379
37.	रानीखेत	2671	73	11811	143
38.	काशीपुर	2700	81	10834	465
39.	बरेली	14611	543	69223	1287
40.	बरेली(यू.ई.बी.)	88	-	488	9
41.	पीलीभीत	3781	153	14847	233
42.	शाहजहाँपुर	5882	153	59371	195
43.	बदायूँ	5459	130	19779	241
44.	मुरादाबाद	12783	738	50517	1015
45.	बिजनौर	9869	263	48568	4263
46.	रामपुर	4522	125	18315	425
47.	गोरखपुर	34512	256	122570	406
48.	गोरखपुर(यू.ई.बी.)	651	17	2936	-
49.	आजमगढ़	9881	85	52525	89
50.	बहराईच	4389	102	15442	157

51.	बस्ती	10273	80	44974	104
52.	देवरिया	10549	168	44973	163
53.	फैजाबाद	9488	267	54843	262
54.	फैजाबाद(यू.ई.बी.)	332	23	1358	-
55.	गोण्डा	9259	82	47235	129
56.	महराजगंज	13239	248	15916	258
57.	सिद्धार्थनगर	3444	3	3620	19
58.	मऊनाथभंजन	10045	17	30129	28
59.	पडरौना	3841	5	21351	27
60.	झाँसी	10977	153	43750	276
61.	बांदा	4560	21	19146	24
62.	हमीरपुर	2987	53	18993	52
63.	ललितपुर	4469	44	8646	67
64.	उरई	7476	99	27467	137
65.	मऊरानीपुर	2211	12	8474	6
66.	कर्वी	1531	9	8282	21
67.	महोबा	1164	21	5775	8
68.	लैन्सडाउन	3953	234	16619	225
69.	चमोली	4022	202	15224	302
70.	पौढ़ी	3315	19	11218	106
71.	श्रीनगर (यू.ई.बी.)	75	1	371	-
72.	लखनऊ	48806	692	230361	1840
73.	लखनऊ(यू.ई.बी.)	162	1	846	-
74.	बाराबंकी	7779	1	846	-
75.	हरदोई	7002	35	28856	63
76.	लखीमपुर खीरी	4518	461	27413	499
77.	रायबरेली	10891	433	48547	504

78.	सीतापुर	9133	50	33655	86
79.	मेरठ	19552	471	87880	1341
80.	मेरठ (यू.ई.बी.)	211	7	752	-
81.	बुलन्दशहर	11008	249	33437	308
82.	मुजफफरनगर	13559	79	48771	296
83.	गाजियाबाद	10532	743	49931	2076
84.	मोदीनगर	2142	82	16412	168
85.	नरौरा	1207	7	5191	109
86.	हापुड़	2222	72	7384	165
87.	देहरादून	19385	1164	85642	1085
88.	सहारनपुर	10284	70	36202	135
89.	टिहरी	6167	39	18587	133
90.	उत्तरकाशी	3234	176	10146	277
91.	हरिद्वार	5324	104	21183	114
92.	गुरुकुल कांगड़ी	68	-	409	-
93.	रुड़की	2513	39	13493	56
94.	रुड़की (यू.ई.बी.)	138	-	351	-
95.	पी.ई.ई.ओ.	795	26	1880	230
96.	पी0एच0 कानपुर	444	14	3354	9
	महायोग	727445	18839	3118928	33328

तालिका

प्रदेश के सेवायोजन कार्यालयों द्वारा वर्ष 1990 में सम्पादित कार्यों का क्षेत्रवार विवरण

क्रमाँक	क्षेत्र का नाम	पंजीयन	काम पर लगाए गए	सक्रिय पंजीयन	अधिसूचित स्थान
1.	कानपुर	75249	4923	328900	5741
2.	आगरा	69077	1813	281678	2898
3.	इलाहाबाद	58916	466	297074	984
4.	वाराणसी	78135	1039	286041	1181
5.	अल्मोड़ा	25334	1163	100388	2244
6.	बरेली	29821	8979	163708	1965
7.	मुरादाबाद	27174	1126	117400	5703
8.	गोरखपुर	119903	1353	457872	1672
9.	झाँसी	35395	412	140535	591
10.	लैन्सडाउन	11365	456	43532	633
11.	लखनऊ	88291	1767	400797	3214
12.	मेरठ	60433	1710	249758	4463
13.	देहरादून	47113	1592	186013	1800
14.	पी0 ई0 ओ0	795	26	1880	230
15.	पी0 एच0 कानपुर	444	14	3354	9
	महायोग	727445	18839	3118928	33328

तालिका

क्रमांक	कार्य विवरण	वर्ष 1989	वर्ष 1990
1.	स्वतः नियोजन हेतु पंजीकृत अभ्यार्थियों की संख्या	18785	14216
2.	स्वतः नियोजन हेतु प्रार्थना-पत्रों का अग्रसारण	17170	13113
3.	स्वतः नियोजित कराने गये व्यक्तियों की संख्या	7320	5538
4.	स्वतः नियोजन प्रोन्नयन हेतु किये गये सम्पर्क	2683	2465
5.	स्वतः नियोजन हेतु आयोजित सामूहिक वार्तायें	8908	8638
6.	स्वतः नियोजन हेतु आयोजित सामूहिक वार्ताओं में भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या	104297	104605
7.	स्वतः नियोजन सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की संख्या	56474	36267
8.	स्वतः नियोजन हेतु आयोजित गोष्ठियों/ बैठकों की संख्या	598	453
9.	वर्ष अन्त में सेवायोजन कार्यालयों में स्वतः नियोजन से सम्बन्धित सक्रिय पंजी पर उपलब्ध अभ्यार्थियों की संख्या	68479	71818
10.	सेवायोजन कार्यालयों के माध्यम से स्वतः नियोजन हेतु उपलब्ध कराए गये ऋण/वित्तीय सहायता की धनराशि (करोड़ रूपयों में)	106	0.89

तालिका

वर्ष 1990 में विशेष वर्ग के अभ्यार्थियों को स्वतः नियोजित कराये जाने की प्रगति का विवरण निम्न प्रकार है

क्रमाँक	वर्गों का नाम	स्वतः नियोजित कराये गये वर्ष 1989	स्वतः नियोजित कराये गये वर्ष 1990
1.	अनुसूचित जाति	2384	1577
2.	अनुसूचित जनजाति	39	19
3.	विकलाँग	33	19
4.	महिलायें	634	677
5.	शिल्पकार योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षित	83	60
6.	पिछड़ी जाति	422	292
7.	भूतपूर्व सैनिक	23	19
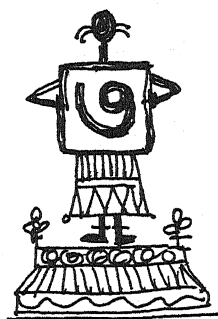
लड़कियों की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की प्रगति

****

भारतीय सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए मनु ने समाज का वर्गीकरण व्यवसाय तथा पेशे के आधार पर किया था। उनका सैद्धान्तिक जातिवाद का आधार व्यवसाय था जिसमें यह उपेक्षा की जाती थी कि लगातार एक ही व्यवसाय करते रहने में कार्यदक्षता की प्रगति बढ़ जाती है। उनके वर्गीकरण में कोई मनुष्य किसी जाति में पैदा हुआ है तो वह उस जाति का न होकर उसकी गिनती उस जाति में की जाएगी जिस व्यवसाय को उसने अपनाया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भारत की सामाजिक

व्यवस्था में एक ऐसी जाति की भी उत्पत्ति हुई जो कि समाज के अन्य वर्गों की सेवा में लगे रहते थे। जैसे - धोबी, नाई, धानुक, पासी, चमार, भंगी आदि परन्तु मनु जी ने यह कभी भी नहीं सोचा था कि कुछ समय बाद जाति का आधार व्यवसाय तथा पेशा न होकर संकीर्ण रूप में जो जिस जाति में पैदा हुआ है परन्तु व्यवसाय और पेशे से वह ब्राह्मण के कार्य नहीं करता है तो भी उसे ब्राह्मण का दर्जा दिया जाएगा उसी प्रकार यदि कोई चमार जाति में पैदा हुआ है तो वह चाहे कितना ही बड़ा पंडित न हो उसे चमार ही माना जाएगा। यह देश का दुर्भाग्य ही रहा कि मनु की सामाजिक व्यवस्था के वर्गीकरण के कारण एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई जिसे प्राचीन समय में शूद्र के नाम से पुकारा गया जो कि व्यवसाय से उच्च समाज की सेवा करते थे। परन्तु उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा कभी भी नहीं दिया गया जो अछूत के घर पैदा हुआ वह सर्वदा अछूत ही रहा है। दुर्भाग्य से उसके लगभग सभी सामाजिक व मानविक अधिकार

छीन लिये गये। देश में स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समय महात्मा गाँधी ने अछूत समाज के उत्थान के लिए जो भी कार्य किए वह चिरस्मरणीय है। उससे पहले आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अछूतों के उत्थान के लिए बहुत ही सार्थक प्रयत्न किए। श्री बाबा भीमराव अम्बेदक ने भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में स्त्री जाति, के उत्थान के लिए संविधान की धारा 46 में प्राविधान किया कि उपरोक्त जाति के प्रत्येक व्यक्ति को शैक्षिक सामाजिक उत्थान करना सरकार के मुख्य कार्यों में से एक कार्य होगा।

I. शासकीय नीति :

शैक्षिक व आर्थिक अभाव दोनों एक ही

सिक्के के पहलू हैं। स्त्री जाति को पूर्ण शिक्षा के अभाव में आर्थिक अभाव का भी सामना करना पड़ा। इस प्रकार समाज का यह अंग हर तरह से इतना कमजोर हो गया कि उसके उत्थान के बिना पूर्ण समाज का कल्याण होना असम्भव सा मालूम होने लगा। प्राचीन युग में भी इस वर्ग को शिक्षा से वंचित रखा गया। मुस्लिम युग तथा ब्रिटिश युग में इन्हें कहीं भी किसी प्रकार से प्रधानता नहीं दी गयी। जो कुछ भी थोड़ा बहुत उनके सामाजिक उत्थान के लिए किया गया, वह देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में ही किया गया।

भारतीय संविधान के प्राविधानों के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में महिला सहायक विभाग की स्थापना सन् 1948 - 1949 में की गई। इसके पहले हरिजनों के लिए कुछ शैक्षिक सुविधाएं शिक्षा विभाग द्वारा दी जाती थी। इस विभाग के अतिरिक्त अपराधशील जाति के कल्याणार्थ एक अलग विभाग 1940-1941 तक हिरलेक्शेशन विभाग के नाम से चला आ रहा था। 1951 तक दोनों विभाग अलग-अलग चलते रहे परन्तु उसी वर्ष इन दोनों विभागों का एकीकरण करके हरिजन कल्याण विभाग की स्थापना की गयी। हरिजन सहायक विभाग के अतिरिक्त, प्रदेश में सन् 1955 में समाज कल्याण विभाग के नाम से एक विभाग स्थापित किया गया तथा 1961 में इन दोनों विभागों को एक निदेशक के अधीन कर दिया और विभाग का नाम हरिजन कल्याण विभाग रखा गया। स्त्री शिक्षा की नीति को इसके द्वारा बल मिला व नई जागरुकता दिखाई दी।

उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा तथा अन्य पिछड़े वर्गों के सर्वांगीण विकास हेतु पांचवीं पंचवर्षीय योजना में सबसे पहले कार्य किया गया जिसमें 1974 से 1979 तक के लिए 2500 लाख रुपये निर्धारित किए गए थे। यह सर्वविदित है कि हमारे देश में सदियों से प्रचलित दोषपूर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप समाज का एक वर्ग पिछड़ता चला गया। इस कुप्रथा से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले वर्ग में वह जातियाँ आती हैं जिन्हें आज हम स्त्री जाति तथा विमुक्त जातियों के नाम से पुकारते हैं। यह सदैव ही उपेक्षित रही है परन्तु विदेशी शासनकाल में इनकी अत्यधिक उपेक्षा की गयी है। इसी कारण इनकी

निर्धनता के साथ शिक्षा के अभाव के कारण सामाजिक स्थिति भी गिरती गई और मानवता के प्रतिकूल इन्हें समाज का एक अछूता अंग माना जाने लगा।

उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। उसी अनुपात में इस प्रदेश में स्त्रियों की संख्या और प्रदेशों से अधिक है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की कुल जनसंख्या 11.98 करोड़ थी जिसमें स्त्रियाँ कुल जनसंख्या का कुछ प्रतिशत से भी अधिक है। विमुक्त जातियों की व अन्य पिछड़ी जातियाँ भी इन्हीं कमजोर वर्ग की श्रेणी में आती हैं। इन सभी कमजोर वर्गों की सम्भावित जनसंख्या प्रदेश की कुल जनसंख्या की 52 प्रतिशत हैं। अतः देश में समाजवादी व्यवस्थापित करने के के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु इन कमजोर वर्गों का सर्वांगीण विकास कर उन्हें अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाना नितान्त आवश्यक है। इस प्रदेश में 66 अनुसूचित जातियाँ तथा 70 विमुक्त जातियाँ हैं जिनमें से 31 स्थिर हैं एवं 39 अस्थिर हैं। 58 पिछड़ी जातियाँ हैं जिनमें 35 हिन्दू तथा 21 मुस्लिम हैं। अनुसूचित जातियों की साक्षरता मात्र 14.96 प्रतिशत हैं तथा 75 प्रतिशत परिवार गरीबी की रेखा के नीचे निवास करते हैं। 1967 में भारत सरकार द्वारा प्रदेश की 5 जातियाँ थारु, भाकसा, भोटिया, राजी (बनरावत) तथा जौन अनुसूचित जन जातियों की श्रेणी में घोषित की गई थी तथा उनके कल्याणार्थ भी अनुसूचित जातियों की भाँति अनेक योजनायें चलाई गयीं थीं।
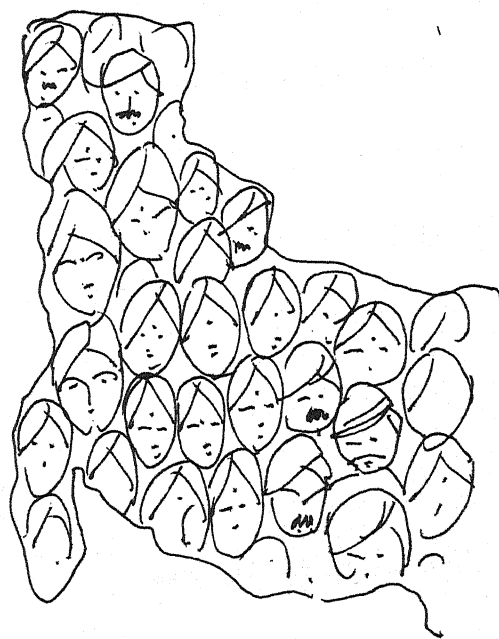
2. लड़कियों की उच्चतर माध्यमिक विद्यालय :

लड़कियों के उत्थान के लिए जो प्रयास किए गए हैं तथा उनमें जो बाधाएं अथवा रुकावटें

आई हैं अथवा समस्यायें पैदा हुई हैं, उनके समाधान के लिए संस्थायें शिक्षा के लिए खोली गई। उनका संचालन इतना अच्छा नहीं था जिससे लड़कियों की शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य प्राप्त किया जा सके।

1. उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त 1948 में विशेषकर 1975-76 के पश्चात् लड़कियों की शिक्षा के माध्यमिक विद्यालय तथा अन्य दुर्बल वर्ग के शिक्षा तथा कल्याणकारी सम्बन्धी राजकीय नीतियों का अध्ययन किया गया और विद्यालयों की अधिकता बढ़ती गयी। प्रोत्साहन के नये द्वार खुले जिससे लड़कियों की चेतना जाग्रत हुई। विद्यालयों में विज्ञान, वाणिज्य और कला की शिक्षा की विशेष व्यवस्था हुई। सभी विषयों में रुचि बढ़ने लगी। विद्यालयों में लड़कियों की संख्या बहुत बढ़ी और अच्छे परिणाम आने आरम्भ हो गए। स्वतंत्रता के बाद आज तक इस ओर इतना प्रयास सरकार की ओर से हुआ है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में विशेषकर लड़कियाँ अब प्रत्येक परिवार से पढ़ने जाने लगी हैं। सभी जातियों में इसकी जागृति दिखाई दे रही है। इस क्षेत्र में पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनता में ऐसा परिवर्तन दीख पड़ रहा है जिससे स्कूलों की अधिकता के साथ बच्चों में भी लगन और माता-पिता व सभी अभिभावकों में रुचि का संचार हुआ है। इसके अच्छे परिणाम निकलने की आशा है। दिन में कामों में व्यस्तता के बाद अब सायँ विद्यालय खोले जा रहे हैं पर उनमें अधिक रुचि जनता के सामने नहीं आई है। अतः लड़कियों के विद्यालय दिन में ही खुलें उनकी उपयोगिता अधिक बनी है। उनका स्वरुप भी अब बदला है।

स्वतंत्रता के बाद लड़कियों के विद्यालय गुणात्मक रुप से उत्तरोत्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। सरकार का इस ओर विशेष ध्यान रहा है। शहर और देहात क्षेत्रों में इनकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। पर अब भी और विद्यालय खोलने की आवश्यकता है जिससे पूर्वी क्षेत्रों की समस्त लड़कियाँ साक्षर हो सकें। आर्थिक स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में इतनी कमजोर रहती है कि छोटी उम्र में ही ये काम पर लग जाती है पर उद्योग-धन्धे अब पनप रहे हैं जिससे इस ओर होना स्वाभाविक है। अतः अब अच्छे परिणाम आने लगे हैं।

3. **उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लड़कियों का नामांकन :**

लड़कियों के नामांकन का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसका सर्वेक्षण के बाद देखकर ऐसा लगता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ विद्यालयों में नामांकन तो होता है पर शिक्षा प्राप्ति के प्रति वह उदासीन दिखाई पड़ती है। विद्यालय खुलते जा रहे हैं पर उनमें उपस्थिति कम रहती है। अतः इस प्रवृत्ति को रोकना होगा। कर्मचारियों व शिक्षकों में इस ओर लापरवाही पर कड़ी नजर रखने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के बाद उच्चतर विद्यालयों की संख्या इतनी बढ़ी है कि अब इस ओर प्रयास होना चाहिये कि प्रत्येक बच्ची साक्षर हो व स्कूल जाना अनिवार्य हो जाय। वहाँ अब दोपहर का भोजन भी मिलने की सरकार की व्यवस्था से इस ओर सुधार हुआ है। खेलकूद, मनोरंजन और सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रवृत्ति बढ़ने से भी अब नामांकन बढ़ा है। अब लड़कियाँ अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है। उनमें आत्मनिर्भरता का तत्व जगा है जो एक शिक्षार्थी के लिए भविष्य में पनपती आशायें व परिणाम लेकर आयेगा। ऐसा कहा जाता है कि जब यह प्रवृत्ति बढ़ेगी तो स्वतः ही साक्षरता अभियान को बल मिल जायेगा।

बालिकाओं के प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में नामांकन संख्या कम तो हो जाती है पर अब इसका प्रतिशत इतना कम है जो पहले कभी सोचा नहीं जा सकता था। अतः यह आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक बालिका के अभिभावक को प्रेरित किया जाय और पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति को मुख्य जीवन धारा से जोड़ दिया जाय। यह

धीरे-धीरे जन आन्दोलन बनना चाहिए तभी इससे पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनता विशेष लाभान्वित हो सकेगी।

प्रस्तुत अध्ययन के लिये सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया है जिसमें ऐतिहासिक शोध विधि तथा आदर्शक मूलक विधि को वरीयता दी गयी है। आंकड़ों को देखकर शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित बुलेटिन से मुख्य रूप से किया गया है तथा उन समस्याओं का जो कि निर्बल वर्ग की प्रगति में बाधक रही है, उनका अध्ययन प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार द्वारा भी किया गया है। ऐसे क्षेत्रों का चुनाव जिनसे ये आँकड़े एकत्रित किये गये हैं वे रेंडम सेम्पलिंग द्वारा किये गये हैं।

बिना हिचकिचाहट के ये कहा जा सकता है कि इस विषय पर बहुत कार्य अभी तक नहीं हुआ है। प्रकाशित पुस्तकों का बहुत अभाव है तथा शोध कार्यकर्ताओं ने इस विषय को अभी तक पूर्ण रुप से नहीं हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र अपनी तरह का प्रथम प्रयास है जिसमें प्रकाशित आंकड़े उ0 प्र0 के शिक्षा विभाग द्वारा विभागीय बुलेटिन एकत्रित किये गए हैं। इन बुलेटिनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में सन् 1975-76 से निर्बल वर्ग और महिला शिक्षा के उत्थान के लिए योजनाबद्ध कार्य किया गया है जिसमें निम्नलिखित तीन योजनायें विशेष रूप से वर्णनीय हैं।

1. शैक्षिक योजनाएँ
2. आर्थिक योजनायें
3. स्वस्थ आवास एवं अन्य योजनायें।

4. लड़कियों की शिक्षा पर व्यय :

महिला शिक्षा निर्बल वर्ग के उत्थान के लिए शासन ने आय के आधार पर शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए योजनाएँ बनाईं थीं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को उनके माता-पिता तथा अभिभावकों की आय तथा उनके स्वयं की योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति तथा पुस्तकीय सहायता दी जाती थी तथा अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों को जो क्षति होती

थी, उसकी पूर्ति की जाती थी। विभागीय शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं को निम्नलिखित मुख्य भागों में बाँटा गया है -

1. पूर्व दशम्, दशमोत्तर कक्षाओं की शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ

2. दशमोत्तर कक्षाओं में शिक्षा सम्बन्धी योजना।

3. प्राविधिक शिक्षा सम्बन्धी योजना।

4. स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा सम्बन्धी कार्य।

पूर्वदशम कक्षाओं की शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं में छात्रवृत्ति तथा अनावर्तीय सहायता मेधावी छात्रों को विशेष छात्रवृत्ति, निःशुल्क शिक्षा स्थानीय निकायों में शुल्क की क्षतिपूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। पिछड़ी जातियों की छात्रवृत्तियाँ आय के आधार पर दी जाती थी। अनुत्तीर्ण दशमोत्तर कक्षाओं के छात्रों व छात्राओं को शुल्क से मुक्ति रहती है।

प्राविधिक शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं में चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग संस्थाओं में पढ़ने वाले छात्रों को अनावर्तीय सहायता दी जाती थी। उत्तर प्रदेश में कुछ विभागीय प्राविधिक संस्थायें भी हैं जिनमें छात्रों व छात्राओं को विशेष रूप से प्रवेश दिया जाता था। विभागीय प्राविधिक संस्थाओं में तीन औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र बख्शी का तालाब, लखनऊ। लाल डिग्गी पार्क, गोरखपुर, पाइन्स नैनीताल एवं गोविन्द बल्लभ पन्त पालीटेक्निक, आर्यनगर सेटलमेंट लखनऊ विशेष उल्लेखनीय है। जहाँ इन छात्रों को विभिन्न व्यवसायों में सर्टीफिकेट
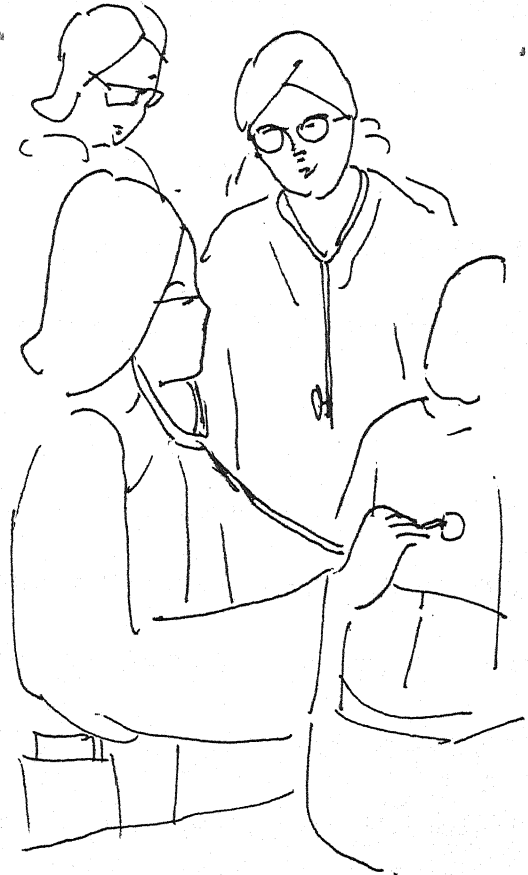
कोर्स तथा पालीटेक्निक में त्रिवर्षीय डिप्लोमा कोर्स था। प्रशिक्षण दिया जाता था। बक्शी का तालाब, लखनऊ में 13 व्यवसाय, गोरखपुर में 4 व्यवसाय तथा नैनीताल में 6 व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके अन्तर्गत गोरखपुर तथा नैनीताल के केन्द्रों में एक वर्षीय आशुलिपिक हिन्दी का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। इन सभी संस्थाओं में छात्रों की भर्ती की जाती थी। इन छात्रों को छात्रावास की निःशुल्क सुविधा उपलब्ध थी। औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों में सभी दैनिक छात्रों का अनिवार्य रूप से रूपये 37.50, छात्रावासीय छात्रों को रुपये 45 प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति प्रदान की जाती थी। छात्रवृत्ति की सुविधाएं पालीटेक्निक में भी उन छात्रों को दी जाती थी, जिनके अभिभावकों की वार्षिक आय केवल 2400 रूपये तक थी। प्रदेश सरकार की सहायता के अतिरिक्त छात्राओं को छात्रवृत्ति की सुविधाएं भारत सरकार द्वारा भी दी जाती थी। ये छात्रवृत्तियाँ समय-समय पर घटती बढ़ती रही हैं।

स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा बालिकाओं के बच्चों को, जो शिक्षा प्रदान की जाती थी, उस सुविधा के बदले में सरकार ऐसी संस्थाओं को धन उपलब्ध कराती थी। स्वैच्छिक संस्थाओं के अन्तर्गत छात्रावास लड़कों तथा लड़कियों के लिए प्राइमरी पाठशालाएं एवं पुस्तकालय चलाये जाते थे। इन स्वैच्छिक संस्थाओं का सम्पूर्ण व्यय भार विभाग की ओर से अनुदान के रूप में दिया जाता था, ये सब संस्थायें पंजीकृत थी और उन पर सरकारी नियंत्रण था, किन्तु जो संस्थाएं अपंजीकृत थी उन पर सम्बन्धित जिला हरिजन तथा समाज कल्याण अधिकारी का नियंत्रण रहता था।

यह पहले कहा जा चुका है कि छात्र-छात्राओं के लिए छात्रावास की सुविधाएं प्रदान की जाती थी, छात्राओं के लिए छात्रावासों के निर्माण का प्राविधान लखनऊ, कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, मेरठ और वाराणसी में था। इसी प्रकार छात्रों के लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिला मुख्यालयों में छात्रावास की पूरी सुविधाएं थीं। हरिजन सेवक संघ किंग्सवे दिल्ली को भी उनकी प्रयोगशाला में उत्तर प्रदेश के पढ़ने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दिये जाने का प्राविधान था। ईश्वर आश्रम इलाहाबाद को छात्राओं की शिक्षा, चिकित्सा एवं सामान्य कल्याण के लिए अनुदान दिया जाता था।

5. **लड़कों की शिक्षा से तुलना :**

छात्राओं के लिए न्यायिक सेवाओं हेतु पूर्ण प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गयी थी, जिसका केन्द्र प्रथम बार इलाहाबाद में रखा गया था। इस तरह की योजना उन अभ्यर्थियों के लिए भी थी जो इन्जीनियरिंग कक्षाओं में प्रवेश के पूर्व कोचिंग करना चाहते थे। डाक्टरी कोर्स में प्रवेश प्राप्त करने के लिए जो अभ्यर्थी कोचिंग कोर्स करना चाहते थे अथवा जो अभ्यर्थी राज्य सेवाओं की परीक्षा के पूर्व कोचिंग करना चाहते थे उन्हें भी कोचिंग की पूरी सुविधा दी जाती थी। स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा शत-प्रतिशत अनुदान पर तीन आश्रम पद्धति विद्यालय संचालित किये जा रहे थे। आश्रम पद्यति विद्यालय सहारनपुर, विकास विद्यालय, ईश्वर शरण आश्रम, इलाहाबाद, प्रगति आश्रमवाला गंज, लखनऊ विशेष उल्लेखनीय है। उपरोक्त के अतिरिक्त वित्तीय वर्श 1989-90 पर्वतीय क्षेत्र के चार जनपद देहरादून, श्रीनगर (पौढ़ी गढ़वाल) नैनीताल तथा अल्मोड़ा में एक-एक राजकीय आश्रमपद्धति विद्यालय कक्षा 1 व 2 स्तर तक खोलने की योजना बन चुकी थी। इस प्रकार सन् 1974-75 से 1989-90 तक प्रदेशीय सरकार तथा भारत सरकार ने छात्राओं की शैक्षिक योजनाओं पर करोड़ों रूपये का व्यय किया जिसमें प्राविधि शिक्षा, इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, औद्योगिक, पूर्व दशम तथा दशमोत्तर शिक्षा, निःशुल्क छात्रावास आदि सभी सम्मिलित है, परन्तु इन सुविधाओं का लाभ मुश्किल से उत्तर प्रदेश के 5 से 10 प्रतिशत छात्र ही लाभ उठा पाये।
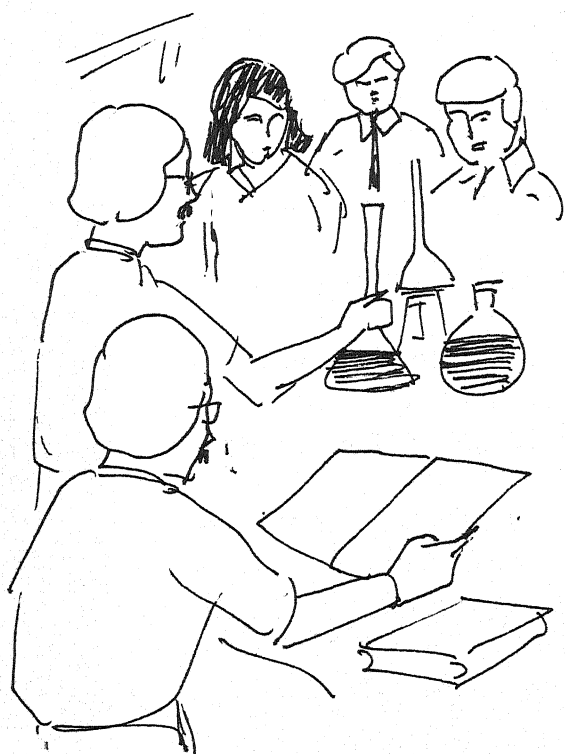
प्रदेश के ग्रामीण व 10 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहने वाले छात्राओं की गृह शिक्षा हेतु अनुदान की व्यवस्था थी। सन् 1974-75 में इस योजना पर 30.90

लाख रूपये व्यय किये गए। नौकरी के लिए साक्षात्कार हेतु यात्रा करने के लिए यात्रा भात्ता भी दिया जाता था। यह पहले के लिए यात्रा भत्ता भी दिया जाता था। यह पहले वर्णन किया जा चुका है कि प्रदेश के मेडिकल इंजीनियरिंग तथा कानून व राज्य सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं में भाग लेने के लिए अभ्यर्थियों को कोचिंग की सुविधा राज्य सरकार द्वारा प्रदान की जाती थी। इन जातियों में भूमिहीन श्रमिकों को कानूनी सहायता निःशुल्क मिलती थी। ऐसे भूमिहीन श्रमिकों के लोगों पर किये जाने वाले अत्याचारों और उन्हें सताये जाने के मामले में निरन्तर वृद्धि हो रही थीं और उन्हें भूमि से बेदखल करने तथा आवंटित भूमि पर कब्जा न दिये जाने की शिकायतें भी बहुत थीं। उत्तर प्रदेश भूमिहीन कृषि श्रमिक ऋण अनुतोष अधिनियम 75 द्वारा उन्हें पुराने कर्जा से मुक्ति दिलाई गई। जिससे बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव पड़ा वह अधिक आर्थिक दृष्टि से परिवार की ऐसी सदस्य बन गयीं जो अपनी पढ़ाई आरम्भ कर सकती थी व खर्च में आने वाला पैसे की कोई कठिनाई सामने नहीं आती थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए समाज के कमजोर वर्ग को न्यायालयों से न्याय दिलाने के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता तथा मुकदमें में होने वाले अन्य व्यय हेतु सहायता दी जाती थी।

समाज की निर्बल जाति के लोगों के आर्थिक विकास वस्तुतः उद्योग, व्यापार, व्यवसाय को समुचित रुप से आरम्भ करने अथवा विकसित करने के लिए उत्तर प्रदेश में महिला शिक्षा विकास पर अधिक ध्यान दिया। इस निगम द्वारा निर्बल वर्ग के लोगों को उद्योग व्यापार तथा व्यवसाय चलने अथवा विकसित करने हेतु या तो सीधे निगम से धन प्राप्त कराया जाता है अथवा बैंकों से धन प्राप्त कराने में सहायता की जाती है। इस निगम द्वारा स्टेट बैंक आफ इण्डिया पंजाब नेशनल बैंक व इलाहाबाद बैंक के सहयोग से काफी छात्राओं को आर्थिक सहायता दी जा चुकी है।

भारत में 1941 की जनगणना के आधार पर लगभग 30 लाख परिवार गरीबी की रेखा के नीचे निवास कर रहे थे। देश की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी का असीम प्रेरणा से 2 अक्टूबर 1980 से छात्राओं के उत्थान हेतु स्पेशल कम्पोनेन्ट प्लान लागू किया गया। छठी पंचवर्षीय

योजना की समाप्ति तक 387575 परिवार इस योजना से लाभान्वित हुए। वर्ष 1985-86 के लिए निगम द्वारा 50 हजार परिवारों का लक्ष्य रखा गया था। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे सभी व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय ग्रामीण क्षेत्र में रुपये 3500 तथा शहरी क्षेत्र में रूपये 4300 से अधिक न हो पाती थी।

उपलब्धि की प्राप्ति में बाधक समस्याओं का विवेचन करने से पता लगता है कि शैक्षिक योजनाओं के क्षेत्र में, शिक्षा के प्रति माता-पिता की उदासीनता बच्चों की लिखाई-पढ़ाई के प्रति लापरवाही, पढ़ाई-लिखाई के लिए उचित वातावरण की कमी पढ़ाई-लिखाई के प्रति सामाजिक निर्बल वर्ग की उपेक्षा तथा कक्षाओं में फेल हो जाने के पश्चात दुबारा प्रवेश न पाने की इच्छा आदि बाधाएं हैं जो कि इस क्षेत्र की प्रगति न होने के कारणों में मुख्य हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति की समस्याएं भी बाधक हैं। इनमें विशेष रुप से छात्रवृत्ति पाने के लिए जो विधियाँ सरकार ने निर्धारित की हैं उनमें भी छात्रों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता क्योंकि सरकार तथा स्कूल के प्रधानाचार्यों के बीच तालमेल नहीं है। दूसरे छात्रवृत्ति के धन में हेराफेरी, घोटाले आदि भी सरकार के सामने आये हैं, जिनके कारण शैक्षिक योजनायें चल नहीं पा रही हैं। इस क्षेत्र में प्रशासन ने जो अन्य सुविधाएं प्रदान की हैं, उनका भी छात्र उपयोग नहीं कर पाते हैं।

आर्थिक सुविधाओं के क्षेत्र में जो धन निर्बल वर्ग के लिए दिया जाता है। चाहे वह घरेलू उद्योगों के लिए हो अथवा स्वास्थ्य व आवास के लिए हो उसे भी प्राप्त करने में पहले तो बहुत

कठिनाई होती है, दौड़धूप करनी पड़ती है। अपने पास से पैसा खर्च करना पड़ता है, दूसरे यदि वह किसी प्रकार मिल भी जाता है तो उसका प्रयोग निर्बल वर्ग उस कार्य के लिए नहीं करता जिसके लिए वह धन दिया गया। सरकारी तंत्र की नीतियाँ भी बहुत स्पष्ट नहीं है, जिससे हर स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

उपरोक्त बाधाओं के निराकरण के लिए यह आवश्यक है कि प्रसार तथा प्रचार की सेवाओं को अधिक महत्व दिया जाय और व्यक्तिगत रूप से निर्बल वर्ग के परिवारों के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाय और उन्हें शिक्षा के लाभों के प्रति उत्साहित किया जाय। बच्चों के पढ़ने के स्कूलों का फासला । कि0 मीटर से कम रहना चाहिए जिससे बच्चे तथा अभिभावक सभी स्कूल से सीधा सम्पर्क स्थापित कर सके। जहाँ निर्बल वर्ग के व्यक्ति रहते हों, वहाँ पढ़ाई-लिखाई का वातावरण तैयार किया जाय। छात्रवृत्ति तथा निःशुल्क पुस्तकों व कापियों की मिलने की सुविधाओं में जो कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें दूर किया जाय।

इस कार्य के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिए। उन्हें बच्चों व माता-पिता की मनोवृत्ति बदलने में सहयोग देना चाहिए और बच्चों को स्कूल भेजने में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। छात्रवृत्ति की उपलब्धि के बारे में जहाँ कहीं भी कठिनाइयाँ आती हों, चाहे वह प्रधानाचार्य के स्तर पर हो, चाहे डाकखाने व बैंकों के स्तर पर हो, चाहे जिला अधिकारियों के स्तर पर हों, उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इन प्रयासों को स्वयंसेवी संस्थाएँ यदि ग्रामीण स्तर से लेकर जिला स्तर तक एक आन्दोलन के रूप में चलाये तो सफलता की अधिक सम्भावनायें हैं।
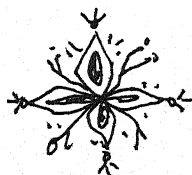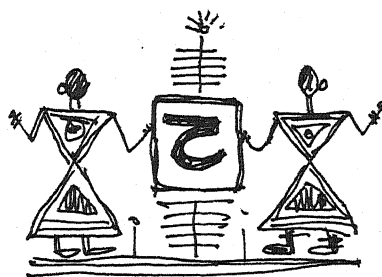
लड़कियों की उच्च शिक्षा की प्रगति

****

1. शासकीय नीतियाँ :

प्राचीन काल में शिक्षा का प्रावधान गुरुकुलों में था उपनयन संस्कार के पश्चात ही यहाँ प्रवेश सम्भव था। सामान्यतः यहाँ निश्चित अवधि में निश्चित ज्ञानार्जन करना पड़ता था। तत्पश्चात समावर्तन संस्कार होता था और ब्रह्मचारी गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता था। प्राचीन समय में गुरुकुल
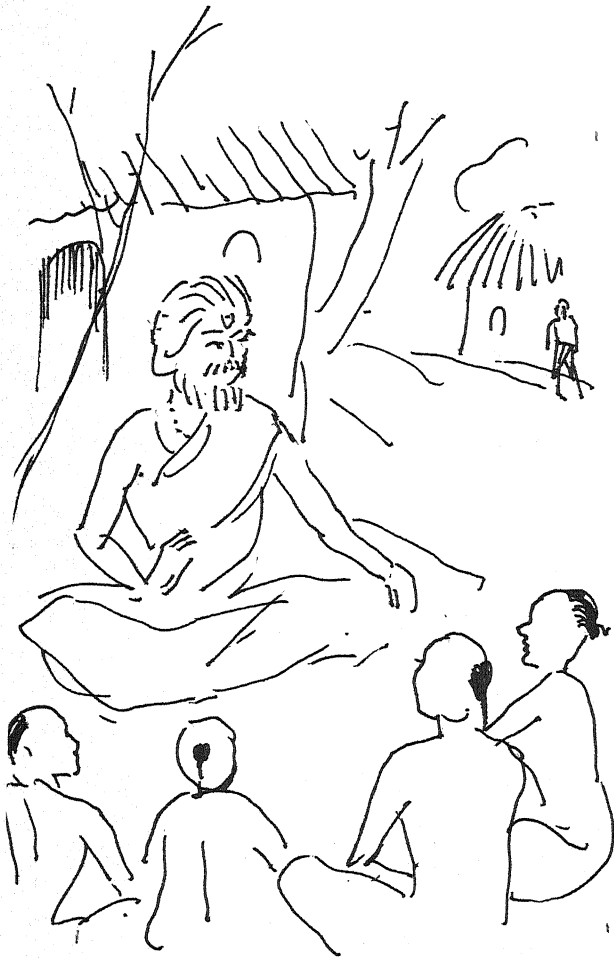
अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ प्रमुखतः वेदों का पठन-पाठन होता था। गुरुकुलों के अतिरिक्त परिषद भी शिक्षा का प्रमुख स्थल था। कालान्तर में तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला आदि अनेक उच्च शिक्षा केन्द्रों का अभ्युदय हुआ। इन्हें विश्वविद्यालयों की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। यहाँ देश-विदेश के छात्र आकर ज्ञानार्जन करते थे। बौद्ध युग में नालन्दा केन्द्र का बहुत अधिक विकास हुआ। इन शिक्षा केन्द्रों में आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकला तथा शल्य विज्ञान आदि महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट विषयों का शिक्षण प्रदान किया जाता था। संक्षेप में प्राचीन काल में गुरुकुलों के अतिरिक्त वैदिक काल के अन्त तक विश्वविद्यालयों का सूत्रपात हो चुका था। बौद्ध युग में "बिहार" शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। तथापि नालन्दा एवं वल्लभी आदि इस युग के प्रमुख विश्वविद्यालय थे।

मुस्लिम शिक्षा अरब संस्कृत की पृष्ठभूमि में प्रदान की जाती थी अतएव यह निश्चित रूप से प्राचीन शिक्षा से भिन्न थी। इस युग में तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालयों का महतव समाप्त हो गया था। मुस्लिम शिक्षा का सम्पूर्ण संगठन-"मकतब" एवं "मदरसों" में समाहित था। "मकतब" प्राथमिक शिक्षा के द्योतक थे तथा "मदरसा" उच्च शिक्षा के। परन्तु मदरसों को विश्वविद्यालयों की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि ये मकतब स्थानीय सीमाओं तक ही सीमित थे जबकि विश्वविद्यालयों की परिधि में पूरा विश्व समाहित रहता है।

मध्य युग में सामान्यतः आधुनिक काल की भाँति शिक्षालय एवं विद्या-भवन नहीं थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि शिक्षा अभिजात वर्ग तक ही सीमित थी। इस युग में स्त्री-शिक्षा नगण्य थी।

राज्य एवं समाज दोनों ही विद्यालयों के निर्माण की ओर से उदासीन थे। अतएव वैदिक एवं मुस्लिम शिक्षा दोनों ही मन्दिरों एवं मस्जिदों में प्रदान की जाती थी।

मध्य युग में ब्राह्मणीय शिक्षा का संचालन मन्दिरों, निजी आवासों तथा अध्यापकों के गृहों में होता था। विद्यालय प्रायः निरन्तर नहीं चलते थे। स्थानीय माँग होने पर वे अस्तित्व में आ जाते थे तथा माँग न होने पर लुप्त हो जाते थे। अध्यापक अधिकांशतः ब्राह्मण होते थे। अधिकांश विद्यालयों में एक ही अध्यापक रहता था तथा औसत प्रति विद्यालय संख्या 15 होती थी।

मध्य-युग में मुस्लिम शिक्षा भी "मकतब" एवं "मदरसों" में प्रदान की जाती थी। ये दोनों ही मस्जिद विशेष से सन्न्द्ध रहते थे। मकतबों में लिपि ज्ञान कराते हुए धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ ही लौकिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी तथा भिन्न भिन्न विषयों के लिये विशिष्ट अध्यापकों की नियुक्ति की जाती थी। प्रशासन की ओर से मकतबों को अनुदान भी दिया जाता था। शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त उपाधियाँ भी प्रदान की जाती थीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मध्ययुगीन भारत में विश्वविद्यालय मानदण्डों के अनुसार विश्वविद्यालय नहीं थे। मुस्लिम-आक्रमणकारियों ने वैदिकयुगीन विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया था। अतएव उनके शिक्षण कार्य समाप्तप्राय हो गया। मुस्लिम शिक्षा के अन्तर्गत विश्वविद्यालयों का निर्माण नहीं हुआ। यद्यपि कई मकतब उच्च शिक्षा के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध थे। तथापि उन्हें विश्वविद्यालय की कोटि में नहीं रखा जा सकता। सामान्यतया इस युग में शिक्षा मन्दिरों, मस्जिदों, निजी आवासों आदि तक ही सीमित थी। पाश्चात्य जगत में भी शिक्षा प्रारम्भ में चर्च के ही जिम्मे थी।

ब्रिटिश-शासन काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्रदत्त 1813 के आज्ञा-पत्र का विशेष महत्व है। इस आज्ञा-पत्र के द्वारा भारतीय जनता की शिक्षा को निश्चयात्मक रूप से कम्पनी के कर्तव्यों में समाविष्ट कर दिया गया। शैक्षिक क्रियाकलापों के लिये प्रतिवर्ष अपेक्षाकृत धनराशि प्राप्त कर ली गयी।

1813 के आज्ञा पत्र में दी हुई धनराशि के व्यय के सम्बन्ध में शिक्षा समिति दो भागों में विभक्त हो गयी। प्राच्यवादी इस धनराशि को भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के शिक्षण एवं उत्थान में व्यय करने के पक्ष में थे। इसके विपरीत पाश्चात्यवादी इस अनुदान को योरोपीय साहित्य विज्ञान-शिक्षण में बल दे रहे थे। यह विवाद पर्याप्त समय तक चलता रहा। इस विवाद की समाप्ति मैकाले, जो उस समय गर्वनर जनरल की काउन्सिल का ला मेम्बर था, के विवरण पत्र के प्रकाश में आने के पश्चात् समाप्त हुई।

मैकाले का विवरण पत्र 1835 में प्रकाश में आया। मैकाले सामान्य शिक्षा समिति का सदस्य होते हुए भी इसके बैठकों में होने वाले विवाद में भाग नहीं लेता था क्योंकि वह जानता था कि कार्यकारिणी परिषद का सदस्य होने के कारण यह विषय पुनः उसके सामने उपस्थिति होगा। अतः जब इस विवाद से सम्बन्धित विषय परिषद के सम्मुख आया तो मैकाले ने नई शिक्षा नीति सम्बन्धी अपना विवरण पत्र तैयार किया। यह 2 फरवरी, 1835 को गर्वनर-जनरल के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। भारतीय शिक्षा-जगत में इसका ऐतिहासिक महत्व है। आज भी मैकाले की शिक्षा-नीति के विरोध की बात भी की जाती है। यद्यपि उसने जो बिन्दु अपने विवरण-पत्र में मुख्य रूप से रक्खे थे वे थे - विज्ञान और अंग्रेजी की शिक्षा।

"माध्यमिक शिक्षा में अंग्रेजी का महत्व बढ़ता गया और 1902 तक अंग्रेजी का शिक्षण माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन गया। परिणामतः भारतीय भाषाओं के अध्ययन की अवहेलना की गई।

मैकाले ने 1813 के आज्ञा पत्र की धाराओं को अपने विवरण पत्र में आंग्लिक दल के पक्ष में विश्लेषित किया। मैकाले द्वारा अपने मत के समर्थन

में प्रस्तुत की गयी युक्तियों को लार्ड विलिमय बेंटिंक ने स्वीकार कर लिया। मैकाले के विवरण पत्र ने बंगाल, बम्बई तथा मद्रास आदि प्रेसेडेंसियों में प्राच्य तथा पाश्चात्य शिक्षा सम्बन्धी विवाद को समाप्त कर दिया तथा उच्च शिक्षा ने एक निश्चित दिशा ग्रहण की। मैकाले के विवरण पत्र के फलस्वरूप ही भारत में भावी विश्वविद्यालयों की नींव स्थापित हुई।

1854 में उड के घोषणा पत्र ने भारतवर्ष में विश्वविद्यालयों की स्थापना हेतु अनुमोदन किया। 19 जुलाई, 1854 का आज्ञापत्र प्राप्त होने के पश्चात ही भारत सरकार ने 1857 में विश्वविद्यालय अधिनियम के अन्तर्गत कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हेतु कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भिक कार्य अत्यन्त कठिन था। अतः कठिनाइयों का होना स्वाभाविक ही था।

परन्तु भारत सरकार ने इन तीनों विश्वविद्यालयों के निगमन अधिनियम 1857 में ही बना लिये थे। स्थानीय स्वरूप के कतिपय परिवर्तनों के अतिरिक्त ये तीनों अधिनियम एक समान थे। इन विश्वविद्यालयों के लिये एक निगमित निकाय का गठन किया गया। प्रथम कुलाधिपति, कुलपति एवं अध्येताओं को इनमें मनोनीत किया। विश्वविद्यालय की सिनेट में कुलाधिपति, कुलपति और पदेन एवं साधारण दोनों ही प्रकार के अध्येता होते थे। अधिनियम में सिनेट को दैनिक कार्यों के संचालन का अधिकार दिया गया था।

उपर्युक्त विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित अधिनियम सर्वथा दोषमुक्त नहीं थे। सिनेट में अध्येताओं की संख्या सीमित नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सिनेटों का आकार बढ़ जाने से उनका कार्य सहज रूप से नहीं चल सका। विश्वविद्यालयों की परम्परानुसार अभिषद (सिंडीकेट) नामक एक लघु सा अधिशाषी निकाय हो और उसे दैनन्दिन प्रशासन का कार्य सौंपा जाय। परन्तु अधिनियम में अभिषद का कोई उल्लेख नहीं किया गया। और सम्पूर्ण शक्तियाँ केवल सिनेट को दे दी गयीं। अधिनियमों की प्रस्तावना ने विश्वविद्यालयों के कार्यों को केवल परीक्षाएं लेने और उपाधियाँ देने तक सीमित कर दिया। निसन्देह यह कार्य लन्दन विश्वविद्यालय के संविधानके साथ सामंजस्य रखने के लिए किया गया था।

1857 के अधिनियम द्वारा जिस प्रकार विश्वविद्यालय संस्था का सर्जन किया गया उसे तकनीकी दृष्टि से सम्बन्धन विश्वविद्यालया कहा जाता है। इस प्रकार की संस्था में सम्बद्ध महाविद्यालय उच्च शिक्षा के वास्तविक केन्द्र होते हैं और स्वयं विश्वविद्यालय शिक्षण इकाई न होकर केवल प्रशासन की एक इकाई होता है जिसका एक मात्र कार्य परीक्षाएं लेना एवं उपाधियाँ देना होता है।

विश्वविद्यालयों की स्थापना होने और भरतीय शिक्षा आयोग की नियुकित किये जाने के मध्य 25 वर्ष का अन्तराल रहा और इस मध्य महाविद्यालयों का द्रुतगति से विस्तार हुआ। इसका प्रमुख कारण माध्यमिक शिक्षा का द्रुतगति से विकास एवं सरकार द्वारा उदार प्रोत्साहन था।

भारतीय शिक्षा आयोग अथवा हण्टर आयोग (1882) के प्रतिवेदन से विश्वविद्यालयीय शिक्षामें कोई सुधार नहीं हुआ। आयोग के कार्यक्षेत्र में स्पष्ट उल्लेख किया गया है "महाविद्यालय शिक्षा में रुचि रखने वाले सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को लेकर गठित किये गये निगमों के नियंत्रण में कार्य करने वाले भारतीय विश्वविद्यालयों के सामान्य कार्यक्रम की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है। "उसमें यह भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इन विश्वविद्यालयों के कार्य के परिणाम के सम्बन्ध में सदैव स्वतन्त्र रूप से ही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आयोग को वृत्तिक महाविद्यालय का अध्ययन करने का भी प्रतिबन्ध किया गया है। क्योंकि इससे उसका कार्य आवश्यक रूप से बढ़ जायेगा। अतः आयोग महाविद्यालीय

शिक्षा का विशद अध्ययन नहीं कर सका। इसलिए इस सम्बन्ध में उसने जो अनुशंसायें की वे प्राथमिक अथवा माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी अनुशंसाओं की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने हेतु माध्यम निश्चित करने का प्रयास किया। इसके अनुसार आधुनिक भारतीय भाषायें इस योग्य नहीं हैं कि इनके माध्यम से महाविद्यालयीय शिक्षा प्रदान की जा सके। अतः महाविद्यालयीय चरण में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा माध्यम के रूप में स्वीकार किये जाने की प्रस्थापना के लिये कोई गुंजाइश नहीं रही। संक्षेप में 1882 के आयोग को विश्वविद्यालय सम्बन्धी सुधारों के विषय में प्रतिवेदन देने से प्रतिबंधित कर दिया गया था। अतएव इस आयोग ने विश्वविद्यालयीय सुधारों के सम्बन्ध में अपनी अनुशंसायें प्रस्तुत नहीं की। इस प्रकार 1902 तक विश्वविद्यालयीय शिक्षा में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हुये।

1998 में लार्ड कर्जन भारत का बाइसराय नियुक्त हुआ। उसने अपने कार्यक्रम में विश्वविद्यालयों के सुधार को सर्वोच्च प्राथमिकता इसलिये प्रदान की थी कि उसके अनुसार विश्वविद्यालय स्तर पर अत्यन्त कठिन प्रयत्न करने की आवश्यकता थी।

अतः भारत आने के कुछ समय बाद ही उसने अपने शिक्षा कार्यक्रम में विश्वविद्यालयों में व्याप्त दोषों के कारण उनके सुधार को प्राथमिकता दी। अभी तक विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने और ि डिग्रियाँ बाँटने का काम कर रहे थे उनका छात्रों से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। भारतीय विश्वविद्यालयों की इस स्थिति की कड़ी आलोचना करते हुए कर्जन ने कहा -

"आदर्श विश्वविद्यालय के दो पहलू होने चाहिए। उसे ज्ञान के प्रसार और विद्या के प्रोत्साहन का स्थान होना चाहिए, और उसे एक मानवीय कारखाना होना चाहिए, जहाँ चरित्र का निर्माण अनुभवरुपी अग्निशाला में किया जाय और जहाँ उसको सत्य की कसौटी पर कसा जाय।"

लार्ड कर्जन ने भारतीय विश्वविद्यालयों के सामने एक नया आदर्श रखा। यह आदर्श था - आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों का। वहाँ कालेज और विश्वविद्यालय एक-दूसरे के अभिन्न अंग थे। वहाँ विश्वविद्यालय, छात्रों की शिक्षा, परीक्षा और अनुशासन का पूर्ण अधिकार रखते थे। वे छात्रों के जीवन को प्रभावित करते थे और उनके चरित्र का निर्माण करते थे। भारतीय विश्वविद्यालय इन सभी बातों से बहुत परे थे। अतः कर्जन का विचार था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में सुधार किए जाने की आवश्यकता थी।

कर्जन ने सुधार इसलिए भी आवश्यक समझा क्योंकि जबसे विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई थी, तब से किसी ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। फलतः उनका रुप रंग-बिरंगा हो गया था। इसके अतिरिक्त कुछ कारण और भी थे। कालेजों की संख्या बहुत अधिक हो जाने के कारण उनका कार्यभार बहुत बढ़ गया था। सिनेट के सदस्यों, की संख्या निश्चित नहीं थी जिसके कारण वे आवश्यकता से अधिक हो गये थे। सिनेट में अध्यापकों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। मान्यता देने और परीक्षा लेने के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों का कालेजों पर कोई नियंत्रण नहीं था। इनकी ओर इनसे सम्बन्धित अन्य कारणों की जाँच की जानी थी। अतः कर्जन ने एक आयोग नियुक्त करने का निश्चय किया।

अपने निश्चय के अनुसार, कर्जन ने 27 जनवरी 1902 को "भारतीय विश्वविद्यालय आयोग" की नियुकित की। नियुक्ति की घोषणा के समय आयोग में किसी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया था पर कुछ समय के बाद थोड़ा सोच-विचार करके इसमें दो भारतीयों को रख दिया गया था। ये भारतीय थे - डॉक्टर गुरुदास बनर्जी और सैयद हसन बिलग्रामी। इसका कार्य ब्रिटिश द्वारा भारत

में स्थापित किये गये विश्वविद्यालयों की दशा और उनके कार्यों के सम्बन्ध में जाँच करना और उनके संगठन एवं कार्य संचालन को सुधारने के उपायों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना था। आयोग ने अपना प्रतिवेदन उसी वर्ष प्रस्तुत कर दिया। इसी आवेदन के आधार पर विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 निर्मित हुआ।

1857 के अधिनियम के अन्तर्गत सीनेट का आकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः 1904 के अधिनियम के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी कि सिनेट में अध्येताओं की संख्या 50 से कम और 100 से अधिक नहीं होगी और अध्येता जीवनपर्यन्त पद पर रहने के बजाय केवल 5 वर्ष के लिए ही पद ग्रहण करेंगे।

1904 के अधिनियम के द्वारा निर्वाचन के सिद्धान्त को भी लागू कर दिया गया। इसके अनुसार अब तीन विश्वविद्यालयों में बीस और अन्य दो विश्वविलयों (पंजाब और इलाहाबाद) में 15 अध्येता निर्वाचित हों।

अधिनियम द्वारा तीसरा परिवर्तन यह किया गया कि अभिषदों का साविधिक मान्यता प्रदान की गयी और विश्वविद्यालय के अध्यापकों को सम्बन्धित अभिषदों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया।

अधिनियम द्वारा चौथा परिवर्तन यह था कि विश्वविद्यालय से महाविद्यालय के सम्बद्ध होने की शर्तें कड़ी कर दी जायें।

अधिनियम द्वारा छठा परिवर्तन यह किया गया था कि सिनेट द्वारा बनाये जाने वाले विनियमों के सम्बन्ध में सरकार को कुछ अधिकार दे दिये गये। 1904 के भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी थी कि सिनेट द्वारा बनाये गये विनियमों का अनुमोदन करते समय सरकार आवश्यक परिवर्तन कर सकती है और यदि सिनेट एक निर्दिष्ट अवधि में विनिमय बनाने में असमर्थ रहती है त ो वह विनियम भी बना सकती है।

अधिनियम का पांचवा परिवर्तन यह था कि इस अधिनियम ने संपरिषद गवर्नर जनरल को यह अधिकार दे दिया कि वह विश्वविद्यालयों की क्षेत्रीय सीमाओं को निश्चित कर दे। 1857 के अधिनियम में इस विषय को भविष्य के लिए छोड़ दिया गया था।

अधिनियम का सातवां परिवर्तन यह था कि विश्वविद्यालय से महाविद्यालय के सम्बद्ध होने की शर्तें अधिक कड़ी कर दी गयीं और यह व्यवस्था की गयी कि अभिषद महाविद्यालयों का निरीक्षण करेंगे तथा उनकी कार्यकुशलता का अवलोकन करने के उपरान्त ही मान्यता एवं सबर्द्धन हेतु अनुमोदन करेंगें।

उपर्युक्त अधिनियम भी 1857 के अधिनियमों की भाँति त्रुटिपूर्ण थे। 1904 के अधिनियमों में विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता देने के सम्बन्ध में अधिनियम में कोई उपबन्ध नहीं थे। दूसरी बात यह थी कि निर्वाचन सिद्धानत स्वागत योग्य था। परन्तु निर्वाचन के लिए रखे गये स्थानों की संख्या न्यून थी। तीसरी बात यह थी कि विश्वविद्यालय में अध्येताओं की संख्या सीमित कर दी गयी। इससे सरकार का यह आशय था कि भारतीय विश्वविद्यालय के संगठन में योरोपीय लोगों का बहुमत हो जाय। चौथी बात यह थी कि महाविद्यालयों के सम्बर्द्धन और असम्बद्धन के लिये अब उपबन्धों को और कड़ा कर दिया गया। इससे पुनर्गठित विश्वविद्यालय निकायों में अधिकांशतः योरोपीय लोग आ गये। अन्ततः सर्वाधिक त्रुटि यह थी कि अधिनियम में ऐसे उपबन्धों का प्रावधान किया गया कि सरकार को विश्वविद्यालयों के प्रशासन में अधिक अधिकार प्राप्त हो गये।

उल्लिखित त्रुटियों के होते हुये 1904 के अधिनियम की अपनी विशेषतायें थी। यदि सामान्य दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि अधिनियम का घोषित लक्ष्य विश्वविद्यालयों के प्रशासन को पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक कार्यकुशल बनाना था और उसे कार्य में यथेष्ट सफलता मिली। महाविद्यालयों के सम्बद्धन सम्बन्धी शर्तों को कड़ी कर देने से दुर्बल महाविद्यालय समाप्त हो गये। अन्तिम बात यह थी कि इस अधिनियम के कारण ही भारतीय विश्वविद्यालयों को प्रथम अनुदान उपलब्ध हुआ।

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 को अधिक सफलता नहीं मिली। अतः इस अधिनियम द्वारा सम्पन्न किये गये कार्य को सुरक्षित रखते हुये इस बात को भी सामान्य रूप से समझा गया कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा के सम्बन्ध में सरकारी नीति को और भी व्यापक बनाया जाय। इंग्लैण्ड की गतिविधियों का प्रभाव भी इस आन्दोलन पर पड़ा। ब्रिटिश विश्वविद्यालयों के इतिहास में 1903-13 का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस काल में विश्वविद्यालय व्यवस्था की मूल्य समस्या पर पुनर्विचार किया गया। विशेषज्ञों की राय थी कि विश्वविद्यालय का संघी स्वरूप सन्तोषप्रद नहीं है। अतः 1913 के आसपास संघीय स्वरूप वाली व्यवस्था का परित्याग कर दिया गया और अधिकांश विश्वविद्यालयों को एकात्मक एवं आवासीय संस्थाओं के रूप में पुनर्गठन किया गया। इन गतिविधियों की गूंज भारतवर्ष में भी हुई। अतः सरकार को विश्वविद्यालय अधिनियम (1904) बनने के एक दशक के अन्दर ही इस समस्या पर पुनर्विचार करना पड़ा। यह कार्य 21 फरवरी, 1913 शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी संकल्प में किया गया। इस संकल्प में विश्वविद्यालयीय शिक्षा सम्बन्धी अनेक घोषणाएं की गयीं परनतु इन घोषणाओं को क्रियान्वित करने के पूर्व विशेषज्ञों द्वारा जाँच करा लेना आवश्यक समझा गया।

1917 में सरकार ने उपयुक्त समस्या का अध्ययन करने और प्रतिवेदन देने के लिये डॉ0 एस0 ई0 सैडेलर की अध्यक्षता में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया गया। डॉ0 सैडेलर की अध्यक्षता में नियुक्त किये जाने के कारण इस आयोग को "सैडेलर आयोग" भी कहते हैं। इसके सदस्य अनेक भारतीय विद्वान भी थे। आयोग का प्रतिवेदन अन्तर्प्रान्तीय महत्व का दस्तावेज था। यद्यपि यह कलकत्ता

विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में था तथापि प्रतिवेदन का सम्पूर्ण भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा।

21 फरवरी, 1913 की शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी संकल्प और कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917-19) के प्रतिवेदन के परिणामस्वरूप 1917-22 की अवधि में अनेक नवीन विश्वविद्यालयों का सृजन हुआ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 1854 के उड के घोषणा पत्र के आधार पर 1857 में विश्वविद्यालय सम्बन्धी अधिनियम पारित हुआ था। इसके द्वारा कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई आदि में लन्दन विश्वविद्यालय के समान विश्वविद्यालयों का सृजन हुआ था। तदन्तर 1867 में पंजाब विश्वविद्यालय और 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। ये सभी सम्बद्धन विश्वविद्यालय थे। 1916 तक इन पाँच विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं की गयी। यद्यपि इस अवधि में महाविद्यालयों एवं उनमें ज्ञानार्जन करने वाले छात्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस वृद्धि के फलस्वरूप विद्यमान विश्वविद्यालयों का कार्य पर्याप्त बढ़ गया। इसलिये नये विश्वविद्यालयों के खोलने का निर्णय एक बुद्धिमत्तापूर्ण कदम था। इस प्रकार से जिन नये विश्वविद्यालयों का सृजन हुआ उनके सम्बन्ध में कतिपय टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं :-

मैसूर : मैसूर में 1916 में एक सम्बद्धन विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। इस विश्वविद्यालय के निगमन से मद्रास विश्वविद्यालय का कार्य पर्याप्त घट गया।

पटना : बिहार तथा उड़ीसा प्रान्त के लिये एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। यह विश्वविद्यालय सामान्यतः प्राचीन विश्वविद्यालयों के आधार पर निर्मित किया गया था परन्तु इसका संविधान 1904 के संविधान से कुछ पृथक था।

बनारस : 1915 में एक अधिनियम द्वारा बनारस में एक अध्यापन एवं आवासिक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया और 1917 में उसने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह विश्वविद्यालय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात है। और यह पण्डित

इसलिए भी पड़ी कि गाँधी जी ने इसी समय असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था जिसका नारा था - शिक्षकों विद्यार्थियों का स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने के लिए आवाहन और उसी क्रम में राष्ट्रीय स्कूलों तथा राष्ट्रीय विद्यापीठों (विश्वविद्यालयों) की स्थापना। गाँधी जी ने स्वयं गुजरात विद्यापीठ के आजीवन कुलाधिपति रहे। ये विश्वविद्यालय भारतीय राष्ट्रीय चेतना तथा संस्कृति को मूलभूत मानकर शिक्षा प्रदान करते थे। ये सेवा, सहिष्णुता, आत्मनियंत्रण और आत्मसंयम की भावना पैदा करते थे। इसके अतिरिक्त बौद्धिक एवं संवेगात्मक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये व्यवस्था करते थे। आत्म प्रकाशन के लिये निरन्तर अवसर प्रदान करते थे। इस सन्दर्भ में जामियाँ मिलिया इस्लामियाँ, गुजरात, बिहार तथा काशी के विद्यापीठों का उल्लेख किया जा सकता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन का प्रयोग इस शताब्दी के प्रारम्भ में किया था जो प्राचीन उपनिषदों की शिक्षा कला (शिक्षण शैली) के अनुरूप था और स्वतन्त्रता के बाद उच्चतम शिक्षा का एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गया और बाद में उसे औपचारिक विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता भी मिल गयी। इसी अवधि में गुरुकुल विश्वविद्यालयों की स्थापना हुयी। 1902 में आर्य प्रतिनिधि सभा ने पंजाब में गुरुकुल विश्वविद्यालयों की स्थापना की। 1924 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना हुयी। इस समय यह डीमड यूनिवर्सिटी है।

भारत सरकार ने 1919 में पुनः एक अधिनियम जारी किया। इस अधिनियम द्वारा लागू किया हुआ संविधान द्वैधशासन प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। इस द्वैध शासन प्रणाली के अधीन प्रान्तीय सरकार के क्रियाकलाप के क्षेत्र को दो भागों में बाँट दिया गया- आरक्षित विभाग और अंतरित विभाग। राज्यपाल को,

मदन मोहन मालवीय के महान कार्य के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया।

अलीगढ़ : अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उद्देश्य भी उपर्युक्त विश्वविद्यालयों के उद्देश्यों के समान हैं। इसे 1920 में स्थापित किया गया था। यह विश्वविद्यालय स्वर्गीय सर सैयद अहमद के महान कार्य का एक जीवित स्मारक है।

यह दोनों ही विश्वविद्यालय भारत सरकार के अधीन है। यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों विश्वविद्यालयों के द्वार सभी जातियों एवं धर्मों के विद्यार्थियों के लिये खुले हैं।

ढाका : 1920 में ढाका में एक एकात्मक, अध्यापन एवं आवासिक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। (इस समय बंगलादेश में है।)

लखनऊ : 1920 में लखनऊ में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया।

उस्मानियाँ : उस्मानियाँ विश्वविद्यालय को निजाम ने 1918 में हैदराबाद में स्थापित किया। भारतवर्ष में इस विश्वविद्यालय का अद्वितीय स्थान है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 1916-20 के मध्य भारत में आवासीय एवं संबद्धन विश्वविद्यालयों का पर्याप्त विकास हुआ। इनसे सम्बन्धित महाविद्यालयों की भी स्थापना हुई। विश्वविद्यालयों की वित्तीय सहायता में भी वृद्धि की गयी। अनेक आधुनिक विषयों का प्रावधान किया गया। कतिपय विश्वविद्यालयों में आचार्य पदों की स्थापना की गयी। श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा भाषण-माला का आयोजन किया जाता था। विश्वविद्यालयों में संकाय-अध्यक्षों की नियुक्तियाँ की गयीं।

1920-21 के मध्य राष्ट्रीय एवं राजनैतिक चेतना का आर्विभाव हुआ। इसके परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय प्रकाश में आये। महात्मा गाँधी ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था को परतन्त्रता का प्रतीक माना और उन्होंने समूची शिक्षा की संकल्पना को देश के समक्ष प्रस्तुत की। इसकी आवश्यकता

जो प्रान्तीय सरकार का शासनाध्यक्ष था, कुछ कार्यकारी पार्षदों की सहायता से आरक्षित विभागों का प्रशासन करना था तथा उनके उचित प्रबन्ध के लिए भारतीय कार्यमन्त्री के प्रति (भारत सरकार के द्वारा) उत्तरदायी रहना था। इसके अतिरिक्त उससे यह भी आशा की जाती थी कि वह अंतरित विभागों का उन मन्त्रियों की सहायता से प्रशासन करेगा जो भारत मन्त्री के प्रति उत्तरदायी नहीं, वरन् एक ऐसे प्रान्तीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी थे जिसमें निर्वाचित लोगों का भारी बहुमत था। प्रान्तीय कार्यपालिका के दो भागों में बंट जाने के कारण ही इस प्रणाली का नाम द्वैध शासन पड़ा और इसी असामान्य ढंग के राजनीतिक संविधान के कारण पहली बार भारतीयों का शिक्षा-विभाग पर नियंत्रण हुआ।

1919 के अधिनियम में वित्तीय व्यवस्था इस प्रकार की गयी थी कि भारतीय मन्त्रीगण अपने कार्यों को सुचारु रूप से संचालन करने में असमर्थ थे। द्वैध शासन प्रणाली की दूसरी विशेषता यह थी कि देश की शिक्षा सेवाओं पर भारतीय मन्त्रियों का नियंत्रण बहुत सीमित था। इस अधिनियम की तीसरी विशेषता यह थी कि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से वित्तीय सहायता अचानक बन्द हो गयी। इस अधिनियम के परिणामस्वरूप शासकीय एवं अशासकीय क्षेत्रों में अत्यधिक असंतोष बढ़ गया। इस असंतोष को देखते हुए 1927 में एक राजकीय आयोग की नियुक्ति हुयी। इस आयोग ने अपनी सहायता के लिए एक सहायक समिति को नियुक्ति की। यह हर्टाग समिति के नाम से प्रसिद्ध है। इस समिति का प्रतिवेदन तत्कालीन समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

सामान्यतः 1921 से 1937 तक विश्वविद्यालयीय शिक्षा में पर्याप्त प्रगति हुई। इस काल में अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड, नये विश्वविद्यालयों का निगमन, प्राचीन संबंधन, विश्वविद्यालयों में परिवर्तन, विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रसार, अनुसंधान की व्यवस्था तथा इण्टरमीडिएट महाविद्यालयों का सूत्रपात हुआ।

भारत पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता की ओर जो प्रयास कर रहा था, भारत सरकार अधिनियम, 1935 उस प्रयाण में आगे की ओर बढ़ाया गया एक अगला कदम था। इस अधिनियम ने प्रशासन की सहज रूप से दोषपूर्ण द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया, आरक्षित और अंतरित विभागों का भेद खत्म कर

दिया और सम्पूर्ण प्रान्तीय प्रशासन क्षेत्र को एक मन्त्रालय के अधीन कर दिया। यह मन्त्रालय एक ऐसे विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी था जिसमें निर्वाचित सदस्यों का प्रचुर बहुमत था। यह नई शासन प्रणाली जो प्रान्तीय स्वशासन के नाम से प्रसिद्ध है, 1937 में ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्तों में लागू हुई थी।

हमारे लिए अधिनियम 1935 के शिक्षा सम्बन्धी प्रभाव को जान लेना नितान्त आवश्यक है। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि 1919 के अधिनियम में शिक्षा को एक ऐसा विषय बना दिया था जो "अंशतः अखिल भारतीय, अंशतः आरक्षित, अंशतः परिसीमाओं के रहते हुए अंतरित और अंशतः परिसीमाओं के बिना अंतरित था। भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने इस असंगत स्थिति में काफी सुधार किया और सम्पूर्ण शैक्षिक क्रिया-कलापों को केवल दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया। ये श्रेणियाँ थी - संघीय (केन्द्रीय) और राज्य (प्रान्तीय)। क्रियाकलापों का विभाजन निम्नलिखित ढंग से किया गया था -

(क) संघीय (अथवा केन्द्रीय) विषय :

1. साम्राज्यिक पुस्तकालय, कलकत्ता, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक, कलकत्ता, और संघ द्वारा नियंत्रित अथवा अर्थयुक्त की गयी अन्य कोई सदृश संस्था।
2. रक्षा सेवाओं में शिक्षा।
3. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।
4. प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारकों का परीक्षण
5. पुरातत्व, और
6. केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में शिक्षा।

(ख) राज्य (अथवा प्रान्तीय) विषय :

जिन विषयों को उपर्युक्त संघीय सूची में शामिल कर लिया गया है उन्हें छोड़कर शिक्षा सम्बन्धी सभी विषयों को राज्य अथवा प्रान्तीय विषय माना गया था।

द्वैध शासन की समाप्ति के साथ ही आरक्षित और अंतरित विषयों का पुराना भेद समाप्त हो गया और आंग्ल भारतीयों तथा यूरोपीय लोगों की शिक्षा आरक्षित विषय नहीं रही।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 से केन्द्रीय सरकार का स्वरूप नहीं बदला क्योंकि उसके द्वारा अपेक्षित संघ 1947 तक नहीं बना। अतः सम्पूर्ण विचाराधीन काल में केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी बनी रही। तो भी, 1946 में जब पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने अंतरिम मन्त्रिमण्डल बनाया तो केन्द्रीय सरकार का शिक्षा विभाग पहली बार राष्ट्रवादी नियंत्रण में आया। 15 अगस्त, 1947 को उसे एक पूर्ण मन्त्रालय बना दिया गया और मौलाना अबुल कलाम आजाद प्रथम संघीय शिक्षा मन्त्री बने।

स्वातन्त्रयोत्तर काल में भारत सरकार ने प्रारम्भ से जो निर्णय लिए उनमें से एक निर्णय के अनुसार डॉ0 एस0 राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना की गयी थी (1948)। यह निर्णय इस बात का अनुभव करके किया गया था कि देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए जितनी वैज्ञानिक, तकनीकी तथा अन्य प्रकार की जनशक्ति की आवश्यकता है उसे पूरा करने के लिए तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन के लिए विश्वविद्यालयीय शिक्षा का पुनर्निर्माण करना अत्यावश्यक है। इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1949 में प्रस्तुत किया।

उच्च शिक्षा के संबंध में यह एक महत्वपूर्ण प्रति आवेदन है। इसने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण अनुशंसाएं की। इनमें सर्वाधिक प्रमुख यह थी कि विद्यालयीय पाठ्यक्रम में वर्तमान इण्टरमीडिएट परीक्षा को सम्मिलित करके यह अवधि बारह वर्ष कर दी जाय। उसने इस बात पर भी बल दिया कि सम्पूर्ण विद्यालयीय एवं महाविद्यालयीय चरणों में सामान्य शिक्षा का समावेश किया जाय। आयोग का यह भी मत था कि विश्वविद्यालयों का कार्य मौलिक अनुसंधान करना ही रहे।

आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा में विश्वविद्यालयों की भूमिका की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया और कृषि, वाणिज्य, प्रौद्योगिकी, विधि तथा चिकित्सा क्षेत्रों व व्यवसाय प्रबन्ध और लोक प्रशासन जैसे नये

व्यावसायिक अध्ययनों पर विस्तार से विचार किया। आयोग ने यह भी महसूस किया कि भारतीय विश्वविद्यालय इन नये उत्तरदायित्वों को तभी पूरा कर सकते हैं जब सभी विश्वविद्यालयों को स्वायत्तशासी निकाय बना दिया जाय। आयोग ने यह भी अनुशंसा की कि अध्यापकों के वेतनमान केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सेवा के कर्मचारियों के वेतनमानों से बहुत कम न हों।

आयोग के मतानुसार परीक्षा-प्रणाली में सुधार अत्यावश्यक है। ऐसी परीक्षा-प्रणाली का सृजन किया जाय जिसमें विद्यार्थियों के पूरे वर्ष के काम को महत्व दिया जा सके। उसने अनुशंसा की कि वस्तुनिष्ठा परीक्षाओं का समावेश किया जाय। उसने विद्यार्थियों के कल्याण, समान अवसर प्रदान करने के लिए छात्रवृत्तियों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, राष्ट्रीय कैडेट कोर, विश्वविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा और समाज सेवा तथा पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था के महत्व पर बल दिया।
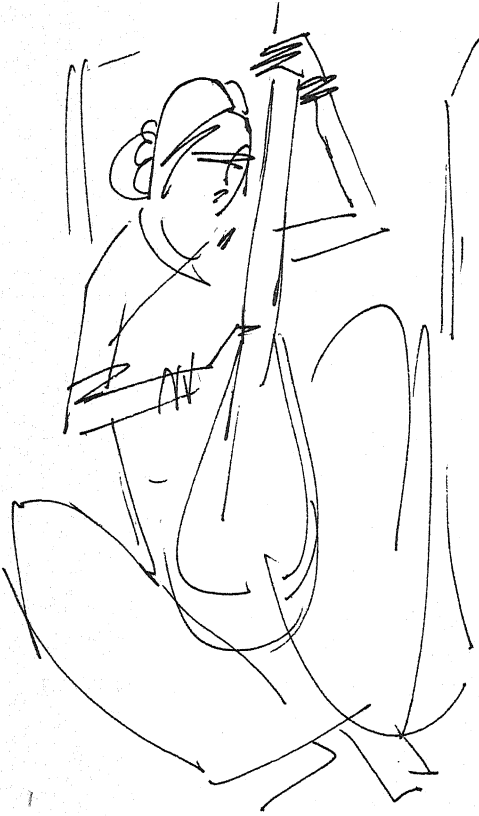
आयोग ने धार्मिक शिक्षा के प्रश्न पर भी चर्चा की। वह यह मानता था कि धर्म निरपेक्ष राज्य में भी धार्मिक शिक्षा का एक अलग स्थान है। उसने शिक्षा के विभिन्न चरणों में धार्मिक शिक्षा को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि संविधान का धर्म निरपेक्ष स्वभाव नष्ट न हो। शिक्षा माध्यम के विषय में आयोग ने यह स्वीकार किया कि संघीय भाषा का आधार हिन्दी ही होगी। उसने इस बात पर बल देते हुए कहा कि शैक्षिक और बौद्धिक जीवन में अंग्रेजी का महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा।

इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए आयोग ने इस बात को परम आवश्यक माना कि अधिक वित्त की व्यवस्था हो। उसने इस सम्बन्ध में राज्य के दायित्व पर बल दिया और यह सुझाव

दिया कि उच्च शिक्षा के लिए अशासकीय दानशीलता को प्रोत्साहन देने के लिए आयकर कानूनों में संशोधन किया जाए। स्वतंत्रता के बाद आज तक जो भी व्यय होता है उसमें उदारता के साथ इस पर विचार किया जाता है। लड़कियों की उच्च शिक्षा जहाँ कठिन है वहीं महँगी भी बहुत पड़ती है। अतः इस ओर लगातार प्रयास होते रहने की आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा से देश समाज और व्यक्ति सभी के विकास के द्वार खुल जाते हैं। अतः यह सर्वोपरि योजना के रूप में देश की प्राथमिकता बननी होगी तभी इस ओर आशातीत परिणाम सामने आ सकेंगे। स्त्री शिक्षा हमारा गौरव होना चाहिये । यही भावना उनमें आत्म-विश्वास जगायेगी और देश को नई दिशा दे सकेगी। हमारा लक्ष्य आज इस ओर ही है। सरकारें व राजनैतिक दल इस पर गम्भीरता से सोचते हैं।

2. लड़कियों की उच्च शिक्षण संस्थायें :

पूर्वी उत्तर प्रदेश में समस्त देश की भाँति उच्च शिक्षण संस्थायें स्त्रियों के अध्ययन के लिये प्रस्तावित हुई है उनमें इंजीनियरिंग (पालीटेक्निीक) कम्प्यूटर, नर्सिंग मेडिकल और महाविद्यालयों की स्थापना हुई है। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस ओर इतनी उन्नति हुई है कि समाज के हर वर्ग की स्त्री (लड़कियाँ) इस ओर आगे आ रही हैं। खेल-कूद, शिल्प एवम् व्यवसायिक शिक्षा में भी सरकार ने सराहनीय प्रयास किये हैं जिससे लड़कियों के बहुमुखी विकास का अवसर दिखाई देने लगा है। अधिकतर लड़कियाँ शिक्षण, नर्सिंग और शिल्प की ओर अधिक आकर्षित हुई हैं। कुछ स्त्री विश्वविद्यालय भी भारत में खुले हैं पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में अभी इस प्रकार का कोई प्रस्ताव सामने नहीं आया है। आशा है निकट भविष्य में कुछ अवश्य ही ऐसा शासकीय सराहनीय प्रयास होगा जिससे यह क्षेत्र भी देश की अन्य शिक्षण संस्थाओं की भाँति यहाँ यह सुविधा उपलब्ध करा सकेगा।

स्त्री शिक्षा का महत्वपूर्ण पक्ष तकनीकी व शिल्प शिक्षा के साथ अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि उनकी शारीरिक व मानसिक दशायें इसके अनुकूल होती हैं। अतः विभिन्न शिक्षा के क्षेत्र जो आज उपलब्ध कराये जा रहे हैं उनमें उनकी रुचि में भी परिवर्तन दिखाई दिया है। ये क्षेत्र मूलतः

निम्नलिखित हैं - 1. शारीरिक (खेलकूद शिक्षा), 2. तकनकी (पालीटेक्निीक शिक्षा, यांत्रिक शिक्षा) 3. स्वास्थ्य (मेडिकल व नर्सिंग शिक्षा) 4. कला शिक्षा (ललित कलायें) व 5. अन्य (शिल्प शिक्षा) कढ़ाई, बुनाई आदि।

उपरोक्त शिक्षा महिलाओं हेतु एक विशेष क्षेत्र को प्रभावित करती हैं जो उनकी शारीरिक व मानसिक के अनुकूल होती हैं। अतः आज स्त्री शिक्षा में उच्च प्राथमिकता इसी ओर प्रत्येक सरकार की रहती है। विशेषकर उच्च शिक्षा में इनका विशेष ध्यान रखा जाता है, जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके।

3. उच्च शिक्षण संस्थाओं में लड़कियों का नामाँकन :

महिला शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश सम्बन्धी अनिवार्यताओं के होते हुये भी स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक वर्ग के परिवारों में इस ओर रुचि बढ़ती दिखाई दी है। यह तो निश्चय ही है कि संस्थाओं की संख्या बढ़ी है। लड़कियों के पढ़ने की रुचि के साथ उन्होंने प्रवेश लेना भी अधिक किया है। अतः प्रत्येक शिक्षण वर्ग में उनकी संख्या अब दिनों दिन बढ़ती जा रही है। स्वतंत्रता के बाद सभी पंचवर्षीय योजनाओं में इस ओर अधिक सुधार हुआ और उनके नामांकन की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। आज चाहे वो शारीरिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, कला शिक्षा या शिल्प शिक्षा हो उनमें नामांकन संख्या बढ़ती जा रही है। आत्मनिर्भरता की ओर रुचि जागी है। यह शुभ लक्षण है जिससे भविष्य के प्रति हम आशावान हुये हैं और स्त्री समाज आत्मबल, गौरव और सम्मान से मात्र आगे बढ़ा है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षण संस्थाओं का अभी अभाव ही कहा जा सकता है क्योंकि जनसंख्या के आकार में महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थाओं और सरकारी संस्थाओं में पूर्व निर्धारित आँकड़ों के अनुरुप वृद्धि नहीं हो पाई है उसके कारण राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक आदि हो सकते हैं। फिर आज की परिस्थितियों में हमें नये सोच के साथ आगे आना है तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। कुछ जन समाजसेवी शिक्षा संस्थाओं का भी दायित्व इस ओर बढ़ जाता है। यदि महिला समाज

जागरुकता के साथ सहयोग दें और उनकी योजनाओं को समझें तो यह लक्ष्य पूरा हो सकता है।

आज विश्व में महिला शिक्षा के प्रति जो उदार दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पड़ा है ऐसा पहले कभी नहीं था परन्तु भारत में तो इसके प्रति अभी नई सोच सामने आई है उनके समकक्ष पहुँचने में ही हमें समय लगेगा। कुछ भारत के ही राज्यों में स्त्री शिक्षा वास्ता और नामांकन बहुत अधिक है पर हमारे पूर्व उत्तर प्रदेश में इसका प्रतिशत बहुत ही कम है। नामांकन की स्थिति तभी सुधरेगी जिन परिवारों में लड़कियों के अभिभावक इस ओर सक्रिय होंगे। हम आशावान है इधर सुधार भी हुआ है पर आशातीत सफलता हमें नहीं मिली है। सरकार और समाज का बराबर का दायित्व है उसे निर्वाह करना होगा तभी इस ओर प्रगति की किरण दिखाई देगी।

4. लड़कियों की शिक्षा पर व्यय :

भारत में शिक्षा पर व्यय का प्रतिशत अन्य देशों के मुकाबले में बहुत कम है। स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान तो गया है पर इतना नहीं जितने विकास की आवश्यकता है। प्रत्येक परिवार में यहाँ लड़कों को भविष्य का सहारा माना जाता है जिससे परिवार के बुजुर्ग लोग उन पर अधिक व्यय करते हैं उन्हें रोजी-रोटी कमाने हेतु बाहर भी जाना होता है जबकि उनके मुकाबले में लड़कियाँ अपने-2 घरों में ही घरेलू कार्य करके जीवन यापन करती हैं। इस कारण उनकी पढ़ाई का महत्व कम माना जाता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह समस्या लड़कियों के साथ और भी अधिक गम्भीर बनी है। उधर परिवारों में लड़कियों पर शिक्षा के व्यय का प्रतिशत इतना कम है कि हम सबके लिये सिर झुकाने की बात कही जा सकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में अवश्य ही कुछ आशातीत सोच बढ़ी है और किसान, मजदूर, पिछड़ी जाति और परिगणित जातियों में भी पढ़ने के प्रति रुचि का अवसर दिखाई दिया है। इससे नई चेतना की किरण फूटी है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में उत्तरोत्तर विकास की गति के साथ जनमानस में नया विचार इस ओर बढ़ा है। अतः इस क्षेत्र में अब महिलायें पढ़ने के लिये अधिक परिश्रम

और मेहनत करने लगी हैं। नवयुवतियाँ विभिन्न क्षेत्रों में छोटी-छोटी ट्रेनिंग आदि लेकर परिवार व भविष्य का सहारा बन जाती हैं। इसलिये सभी स्तर के लोग जागरुक हुये हें और उन्होंने अपनी लड़कियों पर शिक्षा पर व्यय की राशि बढ़ाई है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने राजकीय योजनाओं में लड़कियों पर व्यय की मात्रा बढ़ाई है और प्रत्येक वर्ष नई-2 योजनायें प्रयोग के रूप में चलाई जाती हैं जिससे लड़कियाँ आत्मनिर्भर लड़कियों पर किया गया सरकार का व्यय कम ही रहता है पर अब इधर इसकी राशि बढ़ाई जा रही है। लगभग स्वतंत्रता के पूर्व वर्षों बाद ऐसी स्थिति की आशा की जा रही है कि अब लड़कियाँ लड़कों की भाँति प्रत्येक सत्र में अग्रणी हो रही हैं। परिवार, समाज और सरकार इस ओर सक्रिय भी हुई है जिससे ऐसे परिणाम सामने आये हैं। पहली विचारधारा अब अपना अस्तित्व खो बैठी है जिसमें इस पक्ष की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता था। लड़कियाँ कल का भविष्य हैं। उनसे समाज पुष्ठ होता है अतः उनकी पढ़ाई पर व्यय बेकार नहीं बल्कि भविष्य की धरोहर हेतु समझना चाहिये। समय रहते उसका महत्व सामने भी जाता है।

5. लड़कों की शिक्षा से तुलना :

मानव जाति की लड़कियाँ और लड़के दोनो ऐसी धरोहर होते हैं जिससे समाज व देश की कल्पना साकार होती है। परनतु हमारे देश में प्राचीन काल से लड़कियाँ और लड़कों की ऐसी अलग श्रेणी बन गई जिनमें लड़कियों को केवल घर-बाहर व परिवार से सम्बन्धित ईकाई की जिम्मेदारी दी गई जबकि लड़कों को परिवार की समस्त जिम्मेदारी आमदनी के साथ दी जाती है जिससे सभी सदस्यों का भरण-पोषण होता है। अतः जब इनके क्षेत्र ही अलग-अलग निश्चित कर दिये गये तो धारणायें भी बदली। यही कारण था कि लड़कियों की शिक्षा लड़कों की अपेक्षाकृत कम हुई उनको बाहर निकलने का कम अवसर मिला। यह इसी प्रदेश में नहीं समस्त प्रदेशों में ऐसी ही सोच ने जन्म लिया। सामाजिक बंधनों के साथ उसमें उसी प्रकार का विकास सम्भव हो सका।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियों की शिक्षा स्वतंत्रता के बाद विकसित हुई है परन्तु उसमें आशातीत परिव्यय अभी सामने नहीं आये हैं। लड़कों की अपेक्षा स्कूल, महाविद्यालय, ट्रेनिंग स्कूल इतने कम खुले हैं कि सभी को अवसर मिलना कठिन हो जाता है। दूर-दराज से देहात की लड़कियाँ यदि पढ़ने इधर-उधर जाती हैं तो उनके रहने आदि की समस्यायें भी परिवार के लिये भोजन में बाधक सिद्ध होते हैं। लड़के इस प्रकार की समस्या से मुक्त हो जाते हैं। अपने आप अपनी व्यवस्था बनाकर रहने लगते हैं। इस कारण उनका विकास भी अधिक हो जाता है और तुलना में उनको भविष्य में अवसर भी विकास के अधिक उपलब्ध हो जाते हैं। इन सीमित परिस्थितियों में तुलनात्मक अध्ययन से यह तो बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि लड़कों की अपेक्षाकृत प्रतिशत शिक्षा का अधिक है।

आज जो भी सरकार के माध्यम से हो रहा है वह समाज में नई चेतना ला रहा है, जागरुकता बढ़ी है व लड़कियों में चेतना जगी है जिससे पढ़ाई की ओर रुचि दिन पर दिन बढ़ रही है। प्रत्येक जनपद में ग्राम पंचायतों के माध्यम से अब प्राथमिक महिला विद्यालय प्रत्येक ग्राम में खोले गये हैं जिससे आरम्भिक शिक्षा का अवसर हर लड़की को मिल जाता है फिर धीरे-धीरे जूनियर हाईस्कूल व इंटर तक उनकी शिक्षा कुछ दूर जाकर हो जाती है। अब उतना व्यय परिवार वहन करने लगा है जिससे लड़कियों का शिक्षा का प्रतिशत अब बढ़ा है। लड़कों का और भी अधिक हुआ है पर दोनों हेतु अभी बहुत कुछ करना शेष है तभी देश प्रदेश व क्षेत्रीय विकास की सम्भावनाओं का द्वार खुलेगा।
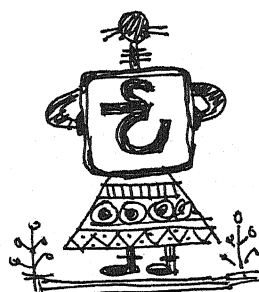
लड़कियों की वृतिक तथा व्यवसायिक शिक्षा

****

जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि से बेरोजगारी का भार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। रोजगार अवसरों को पाने की लालसा में दौड़ता हुआ मनुष्य मानसिक थकान की वर्तमान कुण्ठा और भविष्य का डर उसे भीतर से खोखला करता जा रहा है।

शिक्षा और रोजगार का सम्बन्ध सरकार, उद्योग और व्यवसायों में जो 19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था, साम्राज्यवादी बुनियाद के आधार पर वह आज उच्च शिक्षा पर एक भार सा साबित हुआ तथा उसकी आत्मा को नष्ट करने वाला साबित हुआ। अधिकतर छात्रों के लिए डिग्री प्राप्त करना तथा उसी के अनुसार नौकरी प्रापत करके अपना व्यक्तिगत स्तर तथा पारिवारिक स्तर सुधारने का उद्देश्य रह गया था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ललक नौकरी पाने तक ही सीमित थी।

इस तरह के संकीर्ण व व्यवहारवादी दृष्टिकोण से ही शिक्षा सुविधाओं में और अधिक विकास हो, इसकी माँग हुई। इसी तरह आजादी के बाद नौकरी पाने की होड़ ने शिक्षा के स्तर में काफी गिरावट लाई तथा घटिया स्तर की संस्थाएं खुली जो न तो छात्र को बौद्धिक रूप से योग्य बनाती थी न ही उद्योग धन्धों में निपुण। इस तरह अधकचरी पढ़ाई लिखाई से शिक्षा संस्थाओं में अराजक तत्व पढ़े।

अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थाओं में उच्च शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए किये गये समस्त उपायों को "डिग्री और नौकरी" के सम्बन्ध ने नाकाम कर दिया है। अध्यापकों ने भी कोर्स से अधिक कुछ न जानने व बताने की प्रक्रिया रखी तथा विद्यार्थियों की पढ़ाई भी उसको याद करके परीक्षा भवन में उगलने के अलावा कुछ भी सीखने का प्रयत्न नहीं किया है। उनमें से कुछ अध्यापकों व छात्रों ने इस रोटीन पद्धति को बदलने की कोशिश की जो समय, शक्ति व अध्ययन के मामले में अत्यधिक सीमित है। यहाँ तक कि संसार में सबसे कम।

सबसे अच्छा काम यह हुआ है कि विश्वविद्यालयों की पढ़ाई व उसके मूल्यांकन में जो निहित बुराइयाँ हैं उन पर जनता का ध्यान गया तथा उसकी वैधता पर प्रश्न चिन्ह लगा है उससे शिक्षा में नई चेतना फूँकने का समय आ गया है।

1. **स्नातक स्तर :**

सेवायोजन सेवा का इतिहास लगभग चार दशक पुराना है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर बेरोजगार विमुक्त सैनिकों को सेवायोजित कराकर पुनर्वासित करने हेतु सेवायोजन कार्यालयों का गठन किया गया। इस प्रकार 1945 के जुलाई माह में केन्द्रीय स्तर पर पुनर्वास एवं रोजगार महानिदेशालय की स्थापना की गयी। इस महानिदेशालय के निर्देशन में देश के विभिन्न भागों में सेवायोजन कार्यालयों की स्थापना की गयी। वर्ष 1946 तक यह सेवा केवल द्वितीय विश्वयुद्ध के विमुक्त सैनिकों के पुनर्वास तक ही सीमित रही। देश के बटवारे के पश्चात 1947-48 में सेवायोजन सेवा के द्वारा विस्थापित को पुनर्वासित करने तथा तत्पश्चात जन साधारण को सेवायोजन सेवा प्रदान करने हेतु खोल दिये गये। सेवायोजन सेवा के पुनर्गठन हेतु सांसद श्री शिवाराज की अध्यक्षता में 1952 में प्रशिक्षण एवं सेवायोजन सेवा संगठन समिति का गठन किया गया। इसी समिति की संस्तुति के आधार पर 1956 में सेवायोजन कार्यालयों का दैनिक प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदेश शासन को हस्तान्तरिक कर दिया गया। सेवायोजन सेवा के कार्यों के महत्व को रखते हुए 1959 में भारतीय संसद द्वारा सेवायोजन कार्यालय (रिक्तियों की अनवार्य अधिसूचना) अधिनियम 1959 पारित किया गया जिसे एक मई, 1960 में पूरे देश में प्रभावी किया गया। वर्ष 1960 में पुनर्वास एवं रोजगार महानिदेशालय का नाम परिवर्तत करके सेवायोजन एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय रखा गया।

सेवायोजन कार्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए प्रदेश में 1959-60 में सेवायोजन कार्यालयों की संख्या बढ़कर 42 तथा 1960-61 में 57, वर्ष 1966 में 64, वर्ष 1971 में 75, वर्ष 1976 में 79, वर्ष 1983 में 89 हो गयी तथा दिसम्बर 89 में 97 सेवायोजन कार्यालय कार्यरत थे। इस समय पूरे प्रदेश में 13 क्षेत्रीय सेवायोजन कार्यालय, 46 जिला सेवायोजन सूचना एवं मन्त्रणा केन्द्र विशिष्ट

सेवायोजन कार्यालय, 3 सचल सेवायोजन कार्यालय तथा सेवायोजन कार्यालय में ही 50 अनुसूचित जाति/ जनजाति/ पिछड़े वर्ग तथा विकलांग व्यक्तियों की सेवा नियोजकता में वृद्धि करने के उद्देश्य से प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन केन्द्र स्थापित है। इसके अतिरिक्त पूरे प्रदेश में 6 प्रवर्तन इकाइयाँ (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना)अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत कार्यरत है।

सेवायोजन सेवा के साथ साथ प्रशिक्षित कर्मियों की आवश्यकता भी अनुभव की गयी। अतः शिल्पकार प्रशिक्षण योजना का प्रारम्भ भी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही हुआ। युद्धकाल की तकनीकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए युद्धकाल तकनीकी योजना का आरम्भ वर्ष 1940 में हुआ। यह वर्ष 1946 तक चलती रही। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इसमें आवश्यक संशोधन कर विमुक्त सैनिकों को प्रशिक्षित कर पुनर्वासित करने की योजना बनाई गई। 1947 में स्वतन्त्रयोत्तर काल में देश के विभाजन के परिणामस्वरूप विस्थापितों को भी पुनर्वासित करने हेतु इस प्रशिक्षण योजना का पूरा उपयोग किया गया। इस प्रयास में इस प्रशिक्षण योजना के आकार में पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष 1950 में इसे वयस्क नागरिक प्रशिक्षण योजना का स्वरूप प्रदान किया गया। 1958 अक्टूबर तक यह प्रशिक्षण योजना भारत सरकार एवं वित्तीय नियंत्रण में कार्य करती रही।

वर्ष 1952 में श्री शिवा राव की अध्यक्षता में गठित "शिवाराव समिति" की संस्तुति पर 1956 में इस योजना का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रान्तीय सरकार को सौंप दिया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में संस्थानों की संख्या 15 तथा प्रशिक्षण स्थान 5,904 थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में संस्थानों की संख्या 48 तथा प्रशिक्षण स्थानों की संख्या 17,568 थी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत संस्थानों की संख्या 52 तथा प्रशिक्षण स्थानों की संख्या 27,824 थी। इसमें 1,760 स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित थे। दिसम्बर 89 में कुल 211 संस्थान कार्यरत थे। जिसमें प्रशिक्षण स्थान 50,628 स्वीकृत थे। इन सभी संस्थानों में एम0सी0बी0टी0 पैटर्न पर प्रशिक्षण दिया जाता है। सन् 1965 में 14 प्राविधिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, जिनमें परम्परागत व्यवसायों के प्रशिक्षण की व्यवस्था रही है। प्राविधिक

शिक्षा विभाग से प्रशिक्षण एवं सेवायोजन निदेशालय को हस्तान्तरित कर दिया गया ताकि पूरे प्रदेश भर में प्रमाण पत्र स्तर का प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों के प्रशिक्षण स्तर में एकरुपता आ सके।

1961 में इस योजना को वैधानिक रूप दे दिया गया। संसद द्वारा शिशिक्षु अधिनियम 1961 में पारित तथा 1963 में प्रभावी किया गया। आलोच्य वर्ष प्रदेश के 5670 सेवायोजकों के अधिष्ठानों/ औद्योगिक प्रतिष्ठानों में 21409 स्थान विभिन्न व्यवसाय में उपलब्ध किये गये। 17435 स्थान नवम्बर तक भरे जा चुके हैं। इसमें अनुसूचित जाति/ जनजाति / निर्बल वर्ग महिलाओं तथा विकलांग अभ्यर्थी सम्मिलित हैं। 3969 स्थान रिक्त हैं। जिन्हें भरने का प्रयास किया जा रहा है।

सरकार की नीति के अनुसार संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग के अतिरिक्त ऐसे चयन संस्थाओं का विधिवत सृजन किया गया, जो चयन के मामले में पूर्ण रूप से सक्षम एवं स्वतन्त्र है। इन आयोग/परिषदों आदि का कार्यक्षेत्र किसी विभाग अथवा विशिष्ट पदों तक सीमित है। प्रत्येक ऐसे आयोगों/ परिषदों के पृथक-पृथक चयन नियम हैं। यह आयोग/परिषद प्रायः निम्न प्रकार के हैं :-

1. रेलवे सर्विस कमीशन
2. बैंकिंग सेवा भर्ती बोर्ड
3. कर्मचारी चयन आयोग
4. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
5. कृषि वैज्ञानिक नियुक्ति मण्डल, नई दिल्ली।
6. लोक वट्यभ चयन बोर्ड
7. खादी और ग्रामोद्योग आयोग (सेवा मण्डल)
8. उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग
9. उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग
10. विद्युत सेवा आयोग, लखनऊ
11. उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा मण्डल आदि।

यद्यपि यह तथ्य अत्यन्त खेदजनक है, परनतु वास्तविकता पर आधारित है कि भारत के प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के बाद रोजगार की संभावनाएं कम ही होती चली जा रही हैं। खेद का विषय है कि छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त में भी भारत में 12.3 मिलियन शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार रह गये हैं। पूरे देश में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 50 मिलियन के लगभग है और यह संख्या प्रत्येक वर्ष 5 लाख की दर से बढ़ती जा रही है। 30 वर्ष की योजनाबद्ध अर्थ व्यवस्था और 1,40,000 करोड़ रूपये की आर्थिक एवं विकास कार्यक्रमों पर खर्च करने के बावजूद भी 6.6 मिलियन व्यक्ति प्रत्येक वर्ष गरीबी की रेखा से नीचे होते जा रहे हैं, इस समय ऐसे गरीब व्यक्ति भारत की 700 मिलियन जनसंख्या का 56 प्रतिशत है, और अनुमान लगाया जाता है कि वर्ष 2000 तक देश में 468 मिलियन व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे होंगे।

अब ऐसे "गूंगे" बेरोजगार व्यक्तियों से काम तथा भोजन की मांग की आवाज उठने लगी है, और जैसे जैसे यह कष्ट बढ़ता जायेगा, यह आवाजें और तेज होती जायेंगी। ये भूखे व्यक्ति कोई भीख नहीं मांग रहे हैं, यह संविधान के अन्तर्गत दिये गये अपने मूल अधिकार काम करने के अधिकार की माँग कर रहे हैं जो देश के संविधान के नीति निर्देश सिद्धान्तों में अंकित हैं।

देश के अर्थ विशेषज्ञों का कहना है कि सामान्य आर्थिक उत्पत्ति के अतिरिक्त वर्ष 1985-86 के केन्द्रीय बजट में बेरोजगारी की इस समस्या के निवारण के लिए कोई ठोस सुझाव नहीं रखे गये हैं। डॉ0 आर0 एम0 हनावर, डाइरेक्टर आफ इन्स्टीट्यूट फार फाइनेन्सियल मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च

का कहना है कि इस बजट में गरीबों और बेरोजगारों के प्रति (जो देश की लगभग आधी जनसंख्या के बराबर है) कोई विशेष चिन्ता व्यक्त नहीं की गयी है। उनका कहना है कि यद्यपि ग्रामीण पेयजल की व्यवस्था, सड़कों का निर्माण और विद्युत के उत्पादन की योजनायें रखी गयी हैं परन्तु बजट में नये प्राविधान न होने के कारण यह कार्यक्रम मन्द पड़ जायेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि वित्त मन्त्री को विश्वास है कि कृषि और उद्योग में ऊँची वृद्धि की दर ही हमारी समस्याओं को हल कर देगी।

डा0 वेदामिन शव भूग संडरन, तत्कालीन प्रेसीडेन्ट आफ दि इण्डियन एकानामिक एसोसिएशन का कहना है कि बेरोजगारी गरीबी से भी ज्यादा खतरनाक है और उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया कि केन्द्रीय और राजकीय योजना को इलेक्ट्रानिक्स युग और पूर्ण रोजगार के मध्य सन्तुलन करने पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये।

डॉ0 मेलकम एस0 आदिशेष्षैय्या,श्रीभावातोष दत्ता एवं श्री बांके बिहारीदास, भूतपूर्व वित्त मन्त्री, उड़ीसा ने भी खेद व्यक्त किया कि बजट में गरीबी दूर करने तथा रोजगार सृजन किये जाने वाले कार्यक्रमों के लिये जैसे बी0 आर0 ई0 पी0, आई0 आर0 डी0 पी0 कार्यक्रमों के लिये आर्थिक प्राविधान नहीं किए गए हैं। यद्यपि इसके कोई कारण नहीं दिये गये हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन कार्यक्रमों की मन्द प्रगति के कारण ऐसा किया गया है।

डॉ0 बांके बिहारी दास का कहना है कि शासन रोजगार के अवसर बढ़ाने और साधारण व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी अपने सिर ओढ़ने को तैयार नहीं है और वह यह समझती है कि अर्थ व्यवस्था में वृद्धि ही समाज के नीचे के स्तर तक पहुँच कर स्वयं ही गरीब व बेरोजगार व्यक्तियों को लाभ पहुँचा देगी। परन्तु डॉ0 दास का कहना है कि पिछले अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि केवल उत्पत्ति की दर में वृद्धि से बेरोजगारी की या गरीबी की समस्या का निवारण विकासशील अर्थ व्यवस्था में नहीं होता तब तक कि दूसरे प्रभावशाली उपाय न अपनाये जायें।

श्री भावतोष दत्ता का कहना है कि यह आशा करना व्यर्थ है कि कर में छूट के बाद उद्योगपति रोजगार के बढ़ाने में कोई विशेष प्रयास करेंगे। व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने में व्यापक वितरण प्रणाली किसी हद तक सफल हो सकती है, परन्तु बजट में इस दिशा में कोई सुझाव नहीं दिये गये हैं। इण्डस्ट्रियल क्रेडिट कारपोरेशन आफ इण्डिया के एक अध्ययन में बताया गया कि संगठित क्षेत्र में एक बेरोजगार का अवसर सृजन करने में 40 हजार रूपये का इन्वेस्टमेंट करना पड़ता है एवं ऐसे देश में जहाँ प्रति व्यक्ति वार्षिक आय केवल 340 रूपये हो अर्थात एक दिन में एक रूपये से भी कम, क्या वह देश अपनी बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए एक रोजगार के सृजन पर 40 हजार रूपये खर्च कर सकता है।

भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों में कुल कार्यरत कर्मचारियों के केवल 2.8 प्रतिशत व्यक्ति लगे हुए हैं जबकि 6.6 प्रतिशत व्यक्ति विकेन्द्रीकृत उद्योगों में लगे हुए हैं। असंगठित क्षेत्र में एक रोजगार सृजन करने में 500 रूपये की लागत आती है और जो अतिरिक्त आय होती है वह अधिकतर मजदूरी के भुगतान में खर्च हो जाती है जिससे लोगों के जीवन के स्तर में सुधार होता है और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि संगठित उद्योग की तैयार की हुई वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है।

भारत की भीषण गरीबी, भीषण बेरोजगारी एवं अत्यधिक रोजगार पाने के इच्छुक और गांवों से शहरों की ओर पलायन केवल ग्रामीण स्तर पर हल किया जा सकता है। परनतु ये हमारी योजना नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने से ही सम्भव हो सकता है। पहले के तय किये हुए पैमाने और आर्थिक लेख (थ्योरीज) हमारे देश की आज की परिस्थितियों में लागू नहीं होती, इसके लिये नई कल्पनाओं पर आधारित गैर परम्परागत निर्माणकारी गान्धिज्म प्रोग्राम जो हमारी क्षमताओं पर आधारित हो, अपनाने की आवश्यकता है। श्रम शक्ति पर आधारित टेक्नालाजी को लागू करने की जरुरत है। इससे हमारे श्रम शक्ति के बाहुल्य को विकास कार्यक्रमों में खपाया जा सके। सिंचाई, बाढ़ रोकने के कार्यक्रमों में भारत के बेरोजगार श्रम शक्ति को खपाया जा सकता है। यदि भारत की योजना ग्रामीण केन्द्रित होती तो श्रम शक्ति

का यह बाहुल्य पैदा ही न होता। इस प्रकार की योजनाओं को कुछ राज्यों में अपनाया गया है। आवश्यकता इसकी है कि उन्हें पूरे देश में बड़े पैमाने पर कार्यान्वित किया जाए।

बेरोजगारी दूर करने की बात जोर पकड़ रही है। वर्ष 1989-90 की आर्थिक समीक्षा में कहा गया था कि रोजगार के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य को आठवीं योजना में प्राथमिकता दी जाएगी। वर्ष 1990-91 के बजट के भाषण में वित्त मन्त्री श्री मधु दण्डवते ने भी रोजगार के अवसर बढ़ाने को ही सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता कहा था। ग्यारह अक्टूबर को होने वाली राष्ट्रीय विकास परिषद की मीटिंग में इस विषय को अधिक समय देने को महँगाई जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय को भी कार्यसूची में हटा दिया गया था।

मण्डल आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने सम्बन्धी प्रधानमन्त्री की घोषणा के पश्चात् छात्रों द्वारा देश में जो आरक्षण विरोधी आन्दोलन चलाया जा रहा है उससे व्यापक एवं उग्र स्वरूप को देखते हुए सरकार ने शिक्षित बेरोजगारों के लिये रोजगार के अवसर प्रदान करने की नई योजनाओं की भी घोषणा की है।

वस्तुतः बेरोजगारी की समस्या एक गम्भीर रूप ग्रहण कर चुकी है। योजनाबद्ध विकास के 40 वर्षों में बेरोजगारी बराबर बढ़ती जा रही है। प्रत्येक योजना में बेरोजगारी को दूर करने के उद्देश्य को एक मन्त्र की भाँति दुहराया गया है परन्तु प्रत्येक योजना के अन्त में बेरोजगारी को बढ़ा हुआ ही पाया गया है।

सातवीं योजना के प्रारम्भ में देश में लगभग 1 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार थे। इस योजना के पाँच वर्षों में रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या में चार करोड़ की वृद्धि हो जाने का अनुमान था, और योजना का लक्ष्य भी चार करोड़ अतिरिक्त रोजगार के अवसर निर्माण करना था। इस हेतु जवाहर रोजगार योजना अब तक की सबसे बड़ी योजना थी और वर्ष 1989-90 में इस योजना के लिये 2100 करोड़

रूपये की राशि दी गई थी परन्तु योजना का काल समाप्त हो जाने के बाद भी देश में 2.7 करोड़ व्यक्ति ऐसे थे जिन्हें कि इस योजना में लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की संख्या में तो रखा गया परन्तु उन्हें रोजगार नहीं मिला।

कुल मिलाकर आठवीं योजना के प्रारम्भ में देश में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या का अनुमान चार करोड़ है। जो कि सातवीं योजना के प्रारम्भ की संख्या का चार गुना है। देश में बेरोजगारी क्यों बढ़ती जा रही है यह जानना कठिन नहीं है। वर्ष 1977-78 के बाद के दस वर्षों में देश में रोजगार के अवसरों के बढ़ने की गति धीरे-धीरे कम होती गई है। जबकि जनसंख्या की वृद्धि की गति कम होने के स्थान पर बढ़ी ही है। अतएव रोजगार न पा सकने वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होती रही है।

वर्ष 1977-78 में समाप्त होने वाले पांच वर्षों के समय में सभी रोजगार वाले व्यक्तियों की की संख्या की वृद्धि की गति (2.32 प्रतिशत वार्षिक) भी जनसंख्या की वृद्धि की गति से अधिक थी।

परन्तु 1977-78 से 1983 तक के आगामी छह वर्षों के समय में सभी रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि की गति 2.82 प्रतिशत घटकर 2.22 प्रतिशत रह गई और कृषि क्षेत्र के रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि की गति 2.32 प्रतिशत से घटकर 1.20 प्रतिशत अर्थात आधी रह गई। और फिर 1983 में 1987-88 के आगामी चार वर्षों में सभी रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि की गति 2.22 प्रतिशत से भी घटकर 1.55 प्रतिशत रह गई जो कि

जनसंख्या की वृद्धि गति से भी कम थी। और कृषि क्षेत्र के रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि की गति 1.20 प्रतिशत वार्शिक की घटकर 0.65 प्रतिशत अर्थात जनसंख्या की वृद्धि की गति का एक तिहाई भाग ही रह गई।

इसका अर्थ यह हुआ कि इन अंतिम चार वर्षों के समय में कृषि क्षेत्र में रोजगार चाहने वाले प्रत्येक तीन व्यक्तियों में से केवल एक को ही रोजगार मिल सका और शेष दो रोजगार से वंचित रहे।

यह एक भयावह स्थिति है। इसी कारण आज गाँव में भुखमरी है, असन्तोष है, शोक हे, अराजकता है और शहरों की ओर भागने की होड़ में अग्रसर है।

ग्रामीण क्षेत्रों के इस बहुत बड़े और वर्तमान असन्तुष्ट वर्ग के शतांश को भी मण्डल आयोग की सिफारिशें राहत नहीं पहुँचा सकती। उनके लिये तो गाँव में भी जीविका का प्रबन्ध करना होगा और गाँव में ही रोजगार के अवसर निर्माण करने के लिए जो पूँजी चाहिए वह शहरों की तुलना में लगभग एक तिहाई है।

व्यापार एवं उद्योग के भारतीय मण्डल (फिक्की) ने आठवीं योजना की अवधि में रोजगार के अवसर बढ़ाने की सम्भावनाओं के समबन्ध में एक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार कृषि क्षेत्र में 39,000 करोड़ रूपया व्यय करने से 2.32 करोड़ लोगों के लिए रोजगार के अतिरिक्त अवसर निर्माण हो सकेंगे। परन्तु छोटे उद्योगों में 13,000 करोड़ रूपया लगाने से केवल 27 लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर निर्माण हो सकेंगे।

इस प्रकार कृषि क्षेंत्र में एक व्यक्ति के लिए रोजगार के अवसर निर्माण करने का खर्चा 17,000 रूपये आता है। जबकि छोटे उद्योगों में यही खर्चा 48,000 रूपये हैं। दूसरे शब्दों में जितनी पूँजी से छोटे उद्योगों में एक व्यक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था हो सकती है उतनी ही पूँजी लगाने से कृषि क्षेत्र में तीन व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है।

अतएव देश में से बेरोजगारी दूर करने के लिए यह आवश्यकहे कि कृषि क्षेत्र में रोजगार

कमाने वाले व्यक्तियों की संख्या की वृद्धि की गति को 0.65 प्रतिशत वार्षिक से बढ़ाकर 3 प्रतिशत वा वार्षिक तक लाया जाए और यही बेरोजगार दूर करने का रास्ता भी है।

2. **पत्रोपाधि स्तर :**

लड़कियों के इंजीनियरिंग, प्राविधिक तथा स्थापत्य और ललित कला, अध्यापक प्रशिक्षण, चिकित्सा, कृषि, वाणिज्य तथा शारीरिक शिक्षा आदि में उच्च शिक्षा के बाद विशेष शिक्षा का स्तर संस्थाओं के माध्यम से अंत हुआ है। कुछ विशेष प्रकार की उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त करके लड़कियाँ आज अधिक स्वावलम्बी बनी है। डिग्री कोर्स के बाद की शिक्षा अधिक उपयोगी भी साबित हुई है। रुचिकर भी जिससे लड़कियाँ समाज में आगे आई है। रोजगारपरक यह शिक्षा समाज में उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायक हुई है। संस्थाओं की कमी तो है पर जिनमें यह सुविधा उपलब्ध है उनसे पास करके जब लड़कियाँ अपने जीवन में आती हैं तब उनकी अलग से पहचान बन जाती है। उद्योग और शारीरिक शिक्षा में भी अच्छे मापदण्ड सामने आये हैं। समाज की यह कुण्ठा दूर हुई है कि लड़कियाँ घर से बाहर कुछ नहीं कर सकती। आज उनका विश्वास जगा है। यहां तक कि कोई भी क्षेत्र, जैसे पुलिस, सेना, माऊंटे नियटिंग, तैराकी आदि अब अछूते नहीं रहे हैं। उनमें अच्छे कीर्तिमान सामने आये हैं।

आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि स्वतंत्रता के बाद लड़कियों की शिक्षा में बहुमुखी स्वरूप विकसित हुआ है। इन पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा को उचित स्थान मिला है पर जो धन इन पर व्यय किया अच्छे परिणाम सामने आ सकेंगे। भारत की समस्त योजनाओं पर व्यय जो शिक्षा पर होता है उसका प्रतिशत अत्यन्त कम है। इससे आशातीत परिणाम सामने नहीं आ पाये हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियों की शिक्षा विशेषकर उच्च शिक्षा का अवसर अब भी बहुत कम है। उसकी बढ़ोत्तरी तो हुई है पर इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना है तभी अन्य प्रदेशों व क्षेत्रों की तुलना में इसे रख पायेंगे। महिलाओं में उच्च शिक्षा के प्रति अधिक रुचि को प्रोत्साहन देना है। इसका कारण समाज से बहुत जुड़ा हुआ है जब लड़कियाँ ज्यादा उच्च शिक्षित हो जाती हैं तो उनकी शादी-विवाह

की समस्या माता-पिता की आफत बन जाती है क्योंकि उतना ही शिक्षित लड़का तलाशना पड़ता है। इस अंदेशे से ग्रसित समाज बहुत मितांयुक्त रहता है। अतः उन्हें ग्रामीणांचलों में ऐसे माहौल को तैयार करना होगा जिससे इसका शीघ्र निदान हो सके। जब तक लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती है उनकी आयु भी अधिक हो जाती है। अतः सभी पहलुओं पर गम्भीरता से विचार करना होगा। ये समाज की ऐसी समस्यायें है जिन पर गहरी समझ पैदा करनी होगी।

इन सभी पहलुओं को देखते हुये भी आज ऐसा समय आ गया है जिस में महिला समाज को अपनी नई पहचान बनानी होगी और समस्याओं का समाधान भी स्वयं ढूँढ़ना होगा। कुछ परम्पराओं व मर्यादाओं को छोड़कर नये रास्ते अपनाने होंगे तभी इस ओर उन्नति होगी। लड़कियों ने इस ओर पहल की है जिससे समाज में परिवर्तन दिखाई भी पड़ा है। लड़की व लड़की अब बराबर के योगदान और माने जाते हैं। कंधा से कंधा मिलाकर चलते हैं। समस्यायें किसी एक की नहीं दोनो की हैं। इससे परिणाम अच्छे निकले हैं। भविष्य भी उज्जवल हुआ है। योजनाओं को भी बढ़ावा मिला है। लड़कियाँ केवल आभूषण नहीं अब समाज का ताज बनी हैं।

लड़कियों की वृत्तिक शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा में कृषि, इंजीनियरिंग, ललित कलायें, चिकित्सा, विधि, अध्यापक प्रशिक्षण, वाणिज्य शिक्षा, पशु चिकित्सा, शारीरिक शिक्षा, समाज कार्य तथा अन्य ऐसी शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं जिसमें उच्च स्तर के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। लड़कियाँ इन विभिन्न क्षेत्रों में मात्र अपना कैरियर बनाती हैं। महिला संस्थाओं की स्थापना होती जा रही है। उनकी स्थिति व स्तर में सुधार हो रहा है। मेहनत और लगन से इसके परिणाम सामने आये हैं। समस्त भारत में स्वतंत्रता के बाद इसकी ओर सभी अग्रसर हुये हैं। विशेषकर कुछ पिछड़े राज्यों व क्षेत्रों में नई चेतना का संचार हुआ है जिससे विकास के साधन सामने आये हैं। उत्तर प्रदेश एक बड़ा राज्य है जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश क्षेत्र साधनयुक्त, सम्पन्न और सुविधापरक क्षेत्र माना जाता है। आवागमन के स साधन अधिक है। कृषि व रोजगार के अवसर अधिक हैं। पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसके मुकाबले यह

निम्न है उसका कारण स्पष्ट है कि यहाँ विशेषकर कृषि व व्यवसाय कम पनपे हैं जिससे जीवन स्तर निम्न रह गया है पर आज इस क्षेत्र के प्रति सरकार उदासीन नहीं रही है और बहुमुखी उन्नति के द्वार खुल गयेहैं।

शिक्षा के क्षेत्र में, महिला महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, पालीटेक्निक शिल्प महाविद्यालय और कृषि-उद्योग आदि की संस्थायें खुली है जिससे लड़कियों को पढ़ने के अवसर अधिक उपलब्ध हुये हैं। आज इन पंचवर्षीय योजनाओं से इस क्षेत्र में विकास के द्वार खुले हैं। समाज में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। रोजगारपरक शिक्षा का महत्व बढ़ा है - आत्मविश्वास व जागृति ने इस वर्ग को शक्ति प्रदान की है जिससे आज की महिला पहले की भाँति अपने को निस्साह नहीं महसूस करती हैं। परिवारों में उसका सम्मान बढ़ा है। अच्छी वैज्ञानिक, चिकित्सक, शिक्षिका, विधिवक्ता आदि क्षेत्रों में उसने अपनी विशेष धाक जमाई है। यहाँ तक की शारीरिक शिक्षा में भी अच्छा परिणाम सामने आये हैं। समाज की कल्याणकारी योजनाओं व कार्यों में उनमें अधिक निष्ठा और सच्चाई दिखाई पड़ती है।
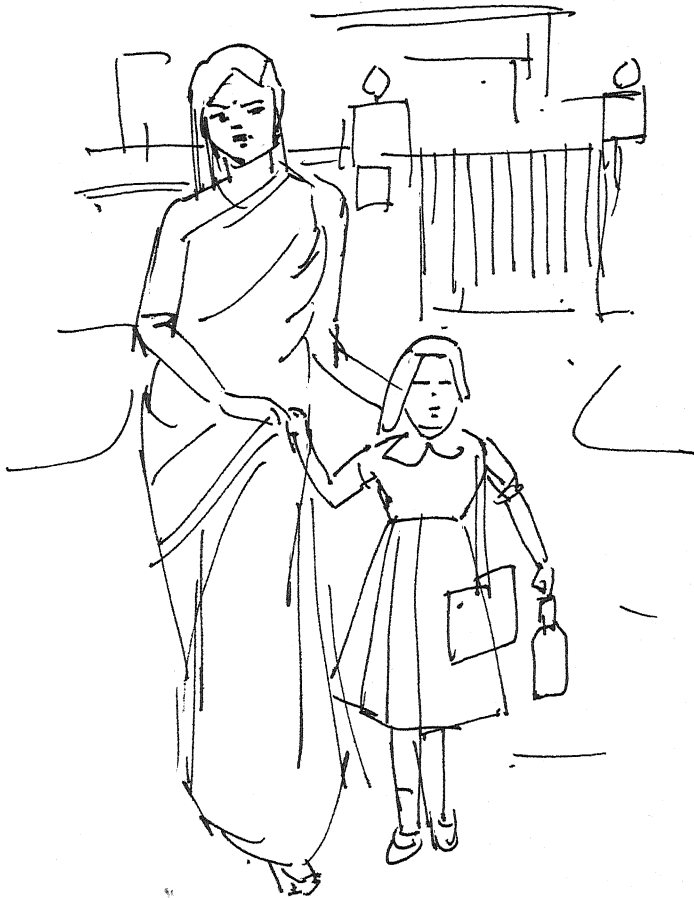
प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार 1947 ई0 के उपरान्त लड़कियों ने शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम प्रस्तुत किये हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में जो जन जागरण इस क्षेत्र में आरम्भ हुआ है उसके अच्छे परिणाम निकले हैं। शिक्षा, नृत्य, चित्रकला, संगीत और अन्य क्षेत्रों में भी इन्होंने रुचि बढ़ाई है। लोक जीवन के पक्ष को अधिक उजागर करके उसको एक नया आयाम दिया है। आज ग्रामीणांचल अपनी

अलग से पहचान बनाये हुये हैं। राजनीति तक के क्षेत्र में आज महिलायें अपनी भागीदारी बनाये हुये हैं। अंततः यही कहना होगा कि स्वतंत्रता के पश्चात इस ओर आशातीत उन्नति हुई है पर हमें इसमें संतुष्ट नहीं होना है। उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ना है। यही आज इस क्षेत्र में उच्च स्तर की शिक्षा का लक्ष्य लड़कियों की भावना का प्रतीक बना है जिससे अच्छे परिणाम सामने आयेंगे ऐसी आशा है।

लड़कियों की शिक्षा की समस्यायें

****
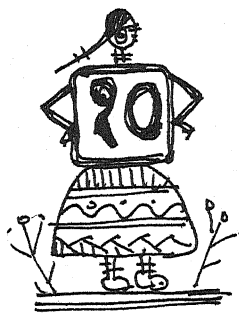
1. स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्री-शिक्षा की स्थिति :

स्वतन्त्र भारत की नारी की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है। जिन बंधनों में वह बंधी हुई थी। वे शनैः शनैः ढीले होते जा रहे हैं जिस स्वतन्त्रता से उसे वंचित कर दिया गया था वह उसे पुनः प्राप्त हो रही है। उसके सम्बन्ध में पुरुषों का दृष्टिकोण बदल रहा है। उसकी

मान्यताऐं भी बदल रही हैं। "भारतीय संविधान" ने भी नारी को समकक्षता प्रदान करते हुए घोषित किया है -

"राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।"

स्वतन्त्रताके पश्चात स्त्री-शिक्षा के सन्दर्भ में आयोग एवं समितियाँ निम्न हैं।

1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधा कृष्णनन) (1948-49)
2. राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (दुर्गाबाई देशमुख समिति) (1958)
3. हंसा मेहता समिति (1962)
4. भक्त वत्ससलम समिति (1963)
5. कोठारी आयोग (शिक्षा आयोग) (1964-66)
6. राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद (1968)
7. राष्ट्रीय महिला समिति (1970-75)
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)
9. प्रोफेसर राममूर्ति समिति (1991)
10. राष्ट्रीय महिला आयोग (1992)

1. **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन कमीशन)** (1948-49) :

स्त्री शिक्षा पर महत्व देते हुये आयोग ने कहा कि शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते यदि सामान्य शिक्षा को पुरुषों या स्त्रियों तक सीमित रखा जाता है तो स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिये क्योंकि ऐसी दशा में शिक्षा को निश्चित रूप से अन्य पीढ़ी को हस्तांतरित किया जा सकेगा। इस आयोग ने स्त्री-शिक्षा के विकासार्थ कुछ प्रमुख सुझाव दिये जो निम्नवत् हैं -

1. स्त्रियों को सुमाता तथा सुगृहणी बनाने की शिक्षा दी जायें।
2. स्त्रियों के लिये शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया जाये।
3. स्त्रियों को गृह अर्थशास्त्र तथा गृह प्रबन्ध अध्ययन की प्रेरणा और अवसर दिये जायें।
4. अध्यापिकाओं को समान कार्यों के लिये अध्यापकों के बराबर वेतन दिया जाये।
5. ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाये जो बालिकाओं को समाज में समान स्थान दिला सके।

सन् 1948 में केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति ने भारत सरकार से माँग की कि माध्यमिक स्तर पर समुचित सुझाव ग्रहण करके उसका पुनर्गठन किया जाना चाहिये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्रीय सरकार ने स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक उत्साह का प्रदर्शन किया। नये संविधान का उद्देश्य भारत में एक ऐसे संविधान की संरचना करनी है, जो सब नागरिकों को बिना धर्म, जाति अथवा लिंग भेद के न्याय एवं समानता पर आधारित हों। इसीलिए सरकार द्वारा स्त्री-शिक्षा के लिए प्रभावशाली कदम उठाये गये। वर्ष 1949-50 के प्राथमिक, मिडिल तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत क्रमशः 28 तथा 13 मात्र था। जबकि महाविद्यालय/विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययन करने वाली छात्राओं की संख्या कुल नामांकन का 10.4 प्रतिशत थी।

योजना आयोग द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्त्री शिक्षा के विकास हेतु जो लक्ष्य निर्धारित

किये गये उसके परिणामस्वरूप स्कूल जाने वाली 6-11 आयु वर्ग की बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत वर्ष 1955-56 में 40 प्रतिशत तक पहुँच गया। जो कि वर्ष 1950-51 में मात्र 23.3 प्रतिशत था। माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन का प्रतिशत 1955-56 में 10 हो गया। सामाजिक शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षा ग्रहण करने वाली 14-40 आयु वर्ग की महिलाओं की संख्या का प्रतिशत लगभग 10 पहुँच गया था। योजना आयोग द्वारा ऐसी बालिकाओं तथा महिलाओं को शिक्षा प्रदान किये जाने, जो कि आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ी थी कि शिक्षा हेतु आवश्यक लक्ष्य निर्धारित किये तथा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से उन्हें शिक्षित करने हेतु पूरे प्रयास किये।

इस अवधि में बालिका शिक्षा संस्थाओं की संख्या 61 लाख से बढ़कर 81 लाख हो गयी। इस संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि का कारण बालिकाओं का सहशिक्षा में प्रवेश लेना था। केवल बालिकाओं की शिक्षा देने वाली शिक्षा संस्थाओं की संख्या इस अवधि में16,814 से बढ़कर 18,671 तक पहुँच गयी। बालिकाओं की शिक्षण संस्थाओं तथा नामांकन में वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि वर्ष 1951-52 से 1955-56 की अवधि में 25,255 से 25,490 तक पहुँच गयी। जबकि बालिकाओं की संख्या क्रमशः 64.7 लाख से 93 लाख तक पहुँच गयी, जो कि लगभग 42.6 प्रतिशत थी।

वर्ष 1951-56 में केवल 7 नये व्यवसायिक विद्यालय खोले गये जबकि बालकों के विद्यालयों की संख्या 131 थी। बालिकाओं के 24 व्यवसायिक विद्यालयों में से 21 प्रशिक्षण विद्यालय थे।

वर्ष 1951-56 योजनाकाल में ही स्त्री शिक्षा के विकास हेतु सरकार द्वारा पारित कानूनों यथा वैवाहिक जीवन में मधुरता तथा समरसता बनाये रखने के लिए 1955 में बना हिन्दू विवाह अधिनियम 1952 का स्पेशल मैरिज एक्ट (विशेष विवाह अधिनियम) जिसमें अन्तर्जातीय विवाह को वैध घोषित किया गया तथा वर व कन्या के विवाह की न्यूनतम आयु 21 व 18 वर्ष निश्चित की गयी। वर्ष 1954 में जब यू.जी.सी. बिल संसद में पेश किया गया तो श्री सी.आर.नरसिम, मिस जयश्री तथा श्री डी.सी. शर्मा ने महिलाओं को भी पुरुषों के समान ही शैक्षिक सुविधायें उपलब्ध कराने पर विशेष जोर दिया।

उन्होंने कहा कि पुरुषों के समान स्त्रियों को भी विद्यालयों में प्रवेश शिक्षकों की भर्ती आदि समस्त पहलुओं पर समान रूप से नामित किया जाना चाहिए। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान विभिन्न समितियों तथा आयोगों में जैसे एन.सी.ई.आर.टी. यू.जी.सी. आदि में नामित किया जाना चाहिए।

योजना आयोग द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस योजनाकाल में महिला शिक्षकों को शिक्षक प्रशिक्षण हेतु विशेष व्यवस्था की गयी। क्योंकि महिला शिक्षकों के अभाव में शिक्षा का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा था। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली स्त्रियों के लिए मकान आदि की सुविधाऐं दिये जाने पर विशेष ध्यान दिया गया। बालिकाओं को शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियाँ एवं विभिन्न राज्यों में स्त्रियों को निम्नलिखित अनुदान प्रदान किये जाने की व्यवस्था की गयी।

1. ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षकों के लिए निःशुल्क आवासीय व्यवस्था।
2. स्कूलों में आया की नियुक्ति हेतु।
3. प्रौढ़ महिलाओं हेतु कन्डेंश कोर्स की व्यवस्था।
4. शिक्षण प्रशिक्षण हेतु महिला शिक्षकों को छात्रवृतित प्रदान करना।
5. रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था।

इसके परिणामस्वरूप इस अवधि में निर्धारित लक्ष्य से अधिक सीमा तक बालिकाओं का नामांकन पहुँच गया। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया। इण्डो यूनाइटेड स्टेट टेक्नीकल कार्पोरेशन प्रोग्राम द्वारा शिक्षा प्रदान की गयी। इस अवधि में विभिन्न प्रकार की महिला शिक्षा संस्थाओं की संख्या निम्न प्रकार से दृष्टिगोचर हुयी।

1. शोध संख्या - 01
2. कला तथा विज्ञान महाविद्यालय - 122
3. प्रशिक्षण महाविद्यालय - 64

4. विशेष शैक्षिक संस्थायें - 17

5. प्राईमरी स्कूल - 16,433

6. प्री प्राइमरी स्कूल - 299

7. व्यावसायिक एवं तकनीकि विद्यालय - 720

8. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र - 5,803

9. विशेष शिक्षा विद्यालय - 163

इन शिक्षण संस्थाओं पर खर्च होने वाली कुल धनराशि 23,85,56,375 थी।

इस योजनाकाल में सरकार द्वारा पारित कानून "हिन्दू माइनोरिटी एण्ड गार्जियनशिप एक्ट' (हिन्दू अल्पव्यस्कता तथा अभिभावकता अधिनियम) 1956 में बना। इस नियम ने स्त्री शिक्षा के विकास में सहयोग किया।

2. राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति - (दुर्गा बाई देशमुख शिक्षा समिति) (1958) :

वर्ष 1958 में भारत सरकार द्वारा महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इसका मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए सुझाव देना था। समिति ने 1959 में अपने सुझाव सरकार को प्रस्तुत किये -

1. कुछ वर्षों तक स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता तथा स्त्रियों के लिए अलग से प्रशासनिक व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के विकास हेतु सरलीकृत अनुदान प्रदान किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

3. उपलब्ध धनराशि का उपयोग बालिकाओं के मिडिल तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षक-प्रशिक्षण स्कूलों, छात्रावास तथा महिला अध्यापकों हेतु छात्रावास बनाये जाने के लिए अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये।

4. राज्यों में भी बालिकाओं एवं स्त्री-शिक्षा की राज्य परिषदों का निर्माण किया जाये।

5. बालक तथा बालिका शिक्षा के लिये विषमता को शीघ्र समाप्त किया जाये।

नारी विकास हेतु दहेज तथा दहेज प्रथा के कारण नारियों पर होने वाले अत्याचारों से उन्हें बचाने के लिए 1961 में दहेज निवारक अधिनियम बना।

3. हंसा मेहता समिति (1962) :

हंसा मेहता समिति ने स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये -

1. प्रारम्भिक स्तर से ही सार्वजनिक रूप से सहशिक्षा को अपनाना चाहिए।

2. माध्यमिक महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में महिला शिक्षकों को नियुक्ति की जानी चाहिये।

3. सामान्य पाठ्यक्रम के साथ बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान का विषय अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के लिए बालकों वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम आवश्यकताओं व अनुभवों और समस्याओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाये।

5. विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम में बालिकाओं हेतु आवश्यक सुधार किये जायें।

6. माध्यमिक स्तर पर लिंग शिक्षा देनी चाहिए।

7. मिडिल स्तर पर वैकल्पिक विषयों एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कला सिखाने की व्यवस्था हो।

4. **भक्त वत्सलम समिति (1963) :**

भारत सरकार ने वर्ष 1963 में एम भक्त वत्सलम की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अधिक प्रगति के साधनों का पता लगाना और जन सहयोग प्राप्त करने के उपाय सुझाना था। समिति की कुछ सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

1. प्राथमिक स्तर पर पृथक-पृथक विद्यालय खोलना अत्यन्त आवश्यक है। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ विद्यालयों में विद्यार्थी बहुत थोड़े होते हैं अतः प्राथमिक स्तर पर सहशिक्षा को लोकप्रिय बनाया जाये।
2. स्त्री-शिक्षा की पर्याप्त प्रगति न होने का कारण यह है कि विद्यालय में महिला अध्यापक नहीं है। अतः स्त्रियों को अध्ययापन व्यवसाय कीओर आकृष्ट किया जाये।
3. लड़कियों की शिक्षा के प्रति जो सामाजिक मान्यताऐं फैली हुयी है उन्हें तोड़ा जाये।
4. निर्धन छात्रों को विद्यालयों की यूनीफार्म तथा पाठ्य पुस्तकें आदि भी दी जायें।
5. जिन राज्यों में स्त्री शिक्षा बहुत पिछड़ी हुयी है उन्हें केन्द्र सरकार विभिन्न स्तरों की शिक्षा हेतु शत-प्रतिशत सहायता दे।

सन् 1960-61 से 1965-66 की तृतीय पंचवर्षीय योजना में विभिन्न व्यवसायों, स्त्रियों की बढ़ती हुयी आवश्यकताओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया तथा उन्हें सुविधाऐं और अधिक दिये जाने पर बल दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1965-66 में स्त्री-शिक्षा का प्रतिशत 21 तक पहुँच गया। जो कि वर्ष 1960-61 में 17 प्रतिशत था।

सन् 1949-50 से 1965-66 के मध्य बालिकाओं के माध्यमिक विद्यालयों में लगभग चार गुना वृद्धि हुयी जबकि इसी अवधि में बालिकाओं के नामांकन में 7 गुना वृद्धि हुयी। वर्ष 1949-50 में यह नामांकन लगभग 14,20,000 था। विश्वविद्यालयों की संख्या में भी वृद्धि हुयी वर्ष 1949-50 में

इनकी संख्या 27 थी जो वर्ष 1950-51 में बढ़कर 32 तक पहुँच गयी तथा यह संख्या वर्ष 1955-56 में 46 तक पहुँच गयी।

इस योजना तक बालकों के नामांकन की संख्या 13,70,000 तथा बालिकाओं की नामांकन संख्या 9,12,000 थी। जो कि बालकों की संख्या की चौथाई थी।

5. **कोठारी आयोग (शिक्षा आयोग) (1964-66) :**

इस आयोग ने सामान्य रूप से देशमुख समिति, हंसा मेहता समिति तथा भक्त वत्सलम समिति की संस्तुतियों का समर्थन करते हुये निम्नलिखित और सुझाव दिये।

1. स्त्रियों और पुरुषों की शिक्षा के बीच जो दूरी है उसे यथाशीघ्र समाप्त किया जाये।
2. स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए आर्थिक सहायता उदारता के साथ दी जाये।
3. स्त्रियों के लिए अंशकालीन रोजगारों की विशेष व्यवस्था हो ताकि वह पारिवारिक दायित्वों को संभालते हुये अपनी शिक्षा का आर्थिक लाभ भी उठा सकें।

आयोग ने यह भी महसूस किया कि महिलाओं को साक्षरता में गिरावट आ रही है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि अभी तक इस ओर जो भी प्रयास किये गये वह नगण्य है। प्रारम्भ में प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय खोलने तथा बालिकाओं के लिए बालकों से भिन्न पाठ्यक्रम लागू किये जाने की माँग चल रही थी। वह अब बालिकाओं के लिए समान प्रकार के पाठ्यक्रम बनाकर लागू किये जाने में परिवर्तित हो गयी। आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि लिंग के आधार पर पाठ्यक्रम में विभेदीकरण न्यायपूर्ण नहीं है।

6. **राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद (1968):**

राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद की दसवीं बैठक में जो कि वर्ष 1968 में सम्पन्न हुयी ने यह सिफारिश की कि -

1. प्राथमिक तथा वयस्क स्तर पर इस आयु वर्ग की महिलाओं के लिए पूर्ण कालिका शिक्षा की

व्यवस्था की जाये।

2. माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण किया जाये ताकि महिलाओं की आवश्यकतानुसार अलग से कुछ नई भारतीय तकनीकि संस्थानों को स्थापित किये जाने की व्यवस्था हो सके।

3. उच्च स्तर पर महिलाओं के लिए एक राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए जो उनमें जिम्मेदारी तथा नेतृत्व शक्ति का विकास कर सके।

4. महिलाओं के लिए पृथक औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए ताकि उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार इन केन्द्रों में प्रशिक्षण प्रदान कराया जा सके।

7. राष्ट्रीय महिला समिति (1970-75) :

वर्ष 1970 में राष्ट्रीय महिला समिति की नियुकित स्त्री शिक्षा के विकास का मूल्यांकन करने तथा उसमें विद्यमान कमियों में आवश्यक सुधार करने के उद्देश्य से की गयी। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की -

1. भविष्य में महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
2. लड़कों तथा लड़कियों में चले आ रहे भेदभाव को समाप्त किया जाये।
3. बालिका शिक्षा के प्रसार के लिए योग्य अध्यापिकाओं जो ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की इच्छुक हो बड़ी संख्या में नियुक्त की जायें।
4. केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को महिला शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

5. सरकार को बालिका एवं बालक विद्यालयों को समान सुविधाऐं देने का प्रयत्न करना चाहिए।

योजना आयोग की चौथी पंचवर्षीय योजना में सभी राज्यों में बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उड़ीसा में बालिकाओं के कम नामांकन की समस्या थी। 11-14 वर्ष वर्ग की बालिकाओं की समस्या विशेष रूप से काफी जटिल थी क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में माता-पिता अपने बच्चों को बड़ी संख्या में स्कूल से वापिस बुला लेते थे। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश में इस समस्या के प्रति विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। चतुर्थ योजना के अन्त तक नामांकन 637 लाख बढ़ा जिसमें 393 लाख लड़के तथा 244 लाख लड़कियाँ शामिल थीं।

वर्ष 1968-69 में माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन 16.3 लाख था। जबकि बालकों का नामांकन 49.5 लाख था। इस प्रकार इस स्तर पर 14-17 वर्ष की बालिकाओं का नामांकन प्रतिशत कुल बालिकाओं की जनसंख्या का 9.8 प्रतिशत था।

सन् 1970-71 से 1975-76 की पंचवर्षीय योजना में 14 वर्ष की आयु वर्ग की बालिकाओं की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया तथा राज्य सरकारों को भी इस दिशा में समुचित कदम उठाने के लिए कहा गया, जिसके फलस्वरूप सभी राज्यों ने 6-11 आयु वर्ग बालिकाओं के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की।

इस योजना में भी प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसी बालिकाओं की संख्या ज्ञात नहीं कर ली जाती जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा पूरी किये बिना ही पढ़ायी बन्द कर दी। इस समस्या ने काफी गम्भीर रूप धारण कर लिया था और यह अभी भी जारी है। इसमें त्वरित वृद्धि का कारण महिला शिक्षकों का अभाव है। यद्यपि महिला शिक्षकों का अभाव इतना अधिक नहीं था जितना कि उन्हें पर्याप्त सुविधा न मिलने के कारण व्यवसाय की ओर आकर्षित न किया जाना है।

बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की योजनाएं सरकार द्वारा लागू की गयी परन्तु उनकी पूर्ण जानकारी आम जनता को न होने के कारण वह पूर्णतः इसे गति देने में असफल सिद्ध हुयी। प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि वर्ष 1978-79 में 6-14 आयु वर्ग के बच्चों में नामांकन न कराने वाली लड़कियों की संख्या 66 प्रतिशत थी।

शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा महिलाओं की शिक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय समिति ने 1974 में अपनी 13वीं बैठक में निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें कीं -

1. केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों तथा स्वायत्त सेवी संस्थाओं को अनुदान के रूप में स्त्री के विकास हेतु विशेष धनराशि प्रदान की जाये।
2. लड़कियों के नामांकन में वृद्धि हेतु विशेष सुविधाऐं उपलब्ध करायीं जायें।
3. महिलाओं को शिक्षण-प्रशिक्षण कन्डेंश कोर्स के द्वारा प्रदान किया जाये।
4. स्थानीय महिलाओं को शिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु प्रेरित करने का प्रयास किया जाये।
5. ऐसी बालिकाओं के लिए जो बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देती है, ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए जिसे वे अनौपचारिक शिक्षा के रूप में ग्रहण कर सकें।
6. महिला औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र तथा महिला पोलिटेक्निक स्थापित करना ताकि स्थानीय आवश्यकताओं तथा समस्याओं के अनुरूप सम्बन्धित ट्रेड का चुनाव कर उस क्षेत्र में सहयोग प्रदान कर सकें।
7. महिला शिक्षकोंके लिए शहरों और नगरों में स्टाफ क्वाटर्स बनाये जाने चाहिए तथा उन्हें पूरी सुरक्षा प्रदान किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

मार्च 1975 में राष्ट्रीय महिला समिति ने राष्ट्रीय शैक्षिक एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा 10+2 के लिए तैयार पाठ्यक्रम पर विचार विमर्श किया तथा सुझाव दिया कि माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर महिला शिक्षा को और अधिक ध्यान देकर प्रगति पथ पर अग्रसर किया जाये। समिति की सिफारिशों

तथा सुझाव सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित राज्यों की सरकारों को भेजे गये ताकि वह आवश्यक कार्य कराके इस ओर विशेष ध्यान दें।

यह उत्साहजनक है कि केन्द्र सरकार ने महिलाओं की समस्याओं का अनुभव किया और पाया कि अधिकांश महिलाऐं अभी भी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से प्रभावित है लेकिन यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि स्त्री शिक्षा के लिए बनायी गयी योजनायें ठीक प्रकार से लागू न हो पायीं और महिलाओं के जीवन और शिक्षा में कोई सकारात्मक प्रगति न हो सकी।

भारतीय महिलाओं के शैक्षिक स्तर सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट 18 मई, 1975 को राज्यसभा के पटल पर रखी गयी। इस पर बोलते हुए तत्कालीन शिक्षा मन्त्री नरुल हसन ने कहा, "पिछले 28 वर्षों में स्त्रियों की दशा में व्यापक सुधार आया है। उन्हें संविधान ने पूरी सुरक्षा के साथ-साथ कई शैक्षिक योजनाओं में भी सहभागी बनाया है और कानूनी मापदण्ड भी उनकी प्रगति में सहायक हुये हैं।"

बहस में भाग लेते हुए स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था कि - "किसी भी समाज के स्तर वहाँ की महिलाओं के स्तर से आंका जाता है। महिलाऐं आज भी पुरुष प्रधान समाज में रह रही है उन्हें जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त हर क्षेत्र में इस मानसिकता से गुजरना पड़ता है चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा समाज में रहने की बात।"

स्त्रियों का निम्न स्तर अथवा उन्हें विकास की कम सुविधाऐं उपलब्ध कराना समाज को विकलांग बना देता है। संसद में स्त्रियों की दशा की सही तस्वीर प्रस्तुत करते हुए रोजादेश पाण्डे ने कहा कि यह वर्ष महिला वर्ष है। मैं जानना चाहूँगी कि सरकार महिलाओं के बारे में क्या सोच रही है। यदि आपका उत्तर यह है कि आप उन्हें पुरुषों के समान ही स्तर प्रदान कर रहे हैं तो आपके प्रति आभारी हूँ मैने देखा है कि बहुत से स्थानों पर ऐसे स्कूल तथा हॉस्टल हैं जहाँ बालिकाऐं स्वयं रहकर पढ़ लिख सकती हैं परन्तु यदि गाँव में जाकर हम बालिकाओं की शिक्षा के बारे में देखें तो स्थिति पूर्णतः विपरीत है वहाँ बालिकाओं को को विद्यालय भेजना किसी पर उपकार समझते हैं। हमें यह

स्थिति बदलनी होगी। हमें ऐसे विद्यालय तथा छात्रावासों की संख्या को बढाना चाहिए जहाँ बालिकाओं को ऐसी सुविधाऐं उपलब्धहो, विशेष रूप से इस महिला वर्ष में हमें बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सन् 1975-76 से 1980-81 योजनाकाल में बालिकाओं को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाये तथा उनके नामांकन में पर्याप्त वृद्धि हो तथा अपव्यय तथा अवरोधन कम से कम हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि स्कूलों के साथ बालवाड़ी भी संलग्न की जाये। ताकि बालिकाऐं स्कूलों में प्रवेश लेने के लिए उत्सुक हों अन्यथा उन्हें घर पर ही रहकर माँ की अनुपस्थिति में छोटे-छोटे भाई बहिनों की देखभाल करनी पड़ेगी इस बात पर भी विशेष जोर देने की जरुरत है कि बालिकाओं के लिए ऐसी योजनाओं लागू की जायें जिससे वे अपने परिवार के लिए कुछ धन कमा सकें तथा आर्थिक सहयोग प्रदान कर सकें। बालिकाओं को निःशुल्क पुस्तकें तथा पाठ्य सामग्री उपलब्ध करायी जानी चाहिए। महिला शिक्षकों को रहने हेतु सरकारी क्वाटर्स बनाये जाने चाहिए। सरकार द्वारा पारित कानून 1976 का समान अधिनियम महिला शिक्षा की प्रगति हेतु प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

महिलाओं के लिए साक्षरता प्रोग्राम को तीव्र गति से विकसित किये जाने की आवश्यकता है। विशेषकर ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ साक्षरता प्रतिशत अत्यन्त कम है। 15-20 वर्ष की आयु वर्ग की छात्राओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था भी उचित प्रकार से लागू किये जाने की आवश्यकता है।

1981 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

साक्षरता का प्रतिशत (1981)

	महिलायें/पुरुष	प्रतिशत
1.	ग्रामीण महिलाऐं	17.96
2.	ग्रामीण पुरुष	40.79
3.	शहरी महिलाऐं	47.82
4.	शहरी पुरुष	65.83

इसी योजनाकाल में सरकार ने कहा कि बालिकाओं को बालकों की अपेक्षा अधिक छात्रवृत्ति दिये जाने की वर्तमान व्यवस्था को चालू रखा जाये तथा उसमें और अधिक धनराशि प्रदान किये जाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। ऐसी सहशिक्षा संस्थाओं को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए जिससे बालिकाओं को चित्रकला तथा शिल्पकला आदि का प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके।

सन् 1980-81 से 1986-87 योजनाकाल में मिडिल स्तर पर बालिकाओं के नामांकन हेतु विशेष प्रयास किये गये प्रौढ़ महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। इन सब प्रयासों के बावजूद हमारी केन्द्र सरकार महिला शिक्षा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकी।

वर्ष 1987-88 में हमारे देश में शिक्षा अत्यन्त तीव्र गति से लोकप्रिय हुयी है और लगभग 50 प्रतिशत बालिकाऐं बालकों के विद्यालय में अध्ययन करती हैं। ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ बालक तथा बालिकाओं की संख्या अधिक नहीं है वहाँ बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय खोलने की आवश्यकता

नहीं है।

नवीन क्षेत्रों में प्रत्येक एक किलोमीटर पर प्राथमिक स्तर पर सहशिक्षा विद्यालय खोले जाने चाहिए। विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर सहशिक्षा उचित एवं लाभकारी सिद्ध हुयी। विश्वविद्यालय शिक्षा में बालिकाओं के नामांकन में वर्ष 1966-67 से ही लगातार वृद्धि परिलक्षित होती है। जो कि निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका

उच्च शिक्षण संस्थाओं में लड़कियों का नामांकन

1966-67 से 1987-88

(राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं को छोड़कर)

वर्ष	कुल नामांकन	लड़कियों का नामांकन	कुल योग
1966-67	11,90,713	2,55,542	21.5
1967-68	13,70,261	3,00,832	21.9
1968-69	15,66,103	3,46,957	22.1
1969-70	17,92,780	3,94,594	12.0
1070-71	19,53,700	4,31,522	22.0
1971-72	20,65,041	4,68,696	22.7
1972-73	21,68,107	4,95,038	22.8
1973-74	22,27,020	5,20,825	23.4
1974-75	23,66,541	5,53,009	23.4
1975-76	23,26,109	5,95,162	24.5
1976-77	24,31,563	5,27,346	25.8
1979-80	26,45,579	7,89,042	26.0
1980-81	27,52,437	7,48,525	27.2
1982-83	29,52,066	8,16,704	27.7
1983-84	33,07,649	9,40,253	28.4
1984-85	34,04,096	9,92,139	29.1
1985-86	35,70,897	10,58,612	29.6
1987-88	36,81,870	11,25,304	30.6

यूनिवर्सिटी डेवलपमेनट इन इण्डिया 1963-64 नई दिल्ली यू.जी.सी. 1963

- थर्ड आल इण्डिया एजुकेशनल सर्वे ऑफ हायर एजुकेशन 1973-74 पेज - 004
- रिपोर्ट आफ दि इयर 1985-86 पेज - 199
- रिपोर्ट आफ दि इयर 1987-88 पेज - 004

इस योजनाकाल में सरकार द्वारा पारित कानूनों यथा 1983 में बना आपराधिक दण्ड संहिता अधिनियम तथा महिला का अश्लील प्रस्तुतीकरण विरोध कानून 1986 का प्रचार प्रसार अभियान तेज करना चाहिए। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि जितना विशाल यह कार्य है उसके लिये यही पर्याप्त नहीं है कि इस क्षेत्र में केवल सरकारी मशीनरी ही कार्य करे। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि स्वयंसेवी संस्थाऐं आगे आयें और स्त्रियों को उन कानूनों के प्रावधानों से अवगत करायें जिनके लाभ उन्हें मिल सकते हैं।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निम्नलिखित उपाय सुझाये गये।

1. बालिकाओं की शिक्षा के लिए परिवेश का निर्माण करना।
2. औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए सुविधाऐं बढ़ाना।
3. वर्तमान कार्यक्रमों का विस्तार एवं अनेक सहायता कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया जाये जिससे बालिकाओं का स्तर बढ़ाया जा सके।
4. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुपूरक पाठ्यक्रम तैयार करना।
5. निरक्षर स्त्रियों के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करके निरक्षरता दूर करने के उपाय किये जायें जिसमें स्वयंसेवी संगठन, सम्पूर्ण मानव शक्ति का सहयोग लिया जाये।

9. प्रोफेसर राममूर्ति समिति (1991) :

समिति के निम्नलिखित सुझाव हैं -

1. अध्यापिकाओं की अधिक से अधिक नियुक्ति की जाये।

2. विद्यालयों में पोषण, स्वास्थ एवं बाल विकास का समावेश किया जाये।

3. विभिन्न स्तरों पर महिला अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की जाये।

4. महिला शिक्षा के लिए अलग से धन का प्राविधान किया जाये।

5. संचार को पूर्वाग्रह से मुक्ति दिलाने के सम्बन्ध में व्यवस्था हो।

6. महिला पॉलिटेक्निक की स्थापना हो।

7. छात्रवृत्तियाँ, मुफत पाठ्यपुस्तकों का वितरण एवं अन्य प्रोत्साहन अधिक से अधिक दिये जायें।

10. राष्ट्रीय महिला आयोग (31 जनवरी 1992) :

सन् 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित किया गया। इसमें एक सदस्य, एक सचिव, पाँच पूर्णकालिक सदस्य है। वर्तमान में सुश्री जयन्ती पटनायक इसकी अध्यक्ष हैं। इस आयोग को निम्न कार्य सौंपि गये -

1. महिलाओं को कानूनी सुरक्षाऐं प्रदान की गयी हैं उन्हें कारगर ढंग से लागू करने के उपाय सुझाना।

2. महिलाओं की शिकायतों पर ध्यान देना एवं जहाँ कानूनों का उल्लंघन होता है। समस्याओं से सम्बन्धित अधिकारी तक पहुँचाना।

4. महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाऐं बनाने के लिए प्रक्रिया में भाग लेना।

5. सुधार ग्रहों, जेलखानों व अन्य स्थानों पर उनके पुर्नवास तथा दशा सुधारने के बारे में सिफारिशें करना।

आयोग ने 7-8 अक्टूबर 1992 को बालिकाओं से बलात्कार विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गयी थी जिसमें घृणित अपराध की घटनाओं की रोकथाम के उपायों पर विचार किया गया था। मार्च 1993 में इलेक्ट्रानिक मीडिया के लिए महिला परिपेक्ष्य पर गोष्ठी हुयी। जिसमें समाचार पत्रों व मुद्रित सामग्रीके बारे में जागरुकता पैदा करना है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में प्रौढ़ शिक्षा का प्रचार केवल नाममात्र को था। सन् 1921 के अधिनियम के अनुसार प्रान्तों में शिक्षा को जनप्रिय मन्त्रियों के हाथों में सौंप दिया गया। परन्तु 1921 में आर्थिक संकट के कारण प्रगति न हो सकी। विभिन्न प्रान्तों में समय-समय पर साक्षरता के लिए आन्दोलन किये गये। इस काल में ईसाई मिशनरियों ने प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार का कार्य बड़े साहस एवं लगन के साथ किया। स्वतन्त्रता से पूर्व ही विभिन्न प्रौढ़ शिक्षा समितियाँ बनी जिन्होंने इस क्षेत्र में तल्लीनता से कार्य किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रौढ़ शिक्षा का नाम समाज शिक्षा रख दिया गया। इसका उद्देश्य साक्षर बनाना ही नहीं वरन् नागरिकता एवं सामाजिकता की शिक्षा देना भी होगया। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इनमें लगातार वृद्धि हुई। इस प्रकार 1991 में साक्षरता दर 52.11 हो गयी जबकि 1981 में 36.2 प्रतिशत थी। इस दशक में सबसे अधिक वृद्धि हुई। साक्षरता के बारे में राष्ट्रीय आंकड़े दशक वार अग्रलिखित सारणी द्वारा दर्शाये गये हैं।

भारतवर्ष साक्षरता प्रतिशत

वर्ष	पुरुष	महिलाऐं	कुल (व्यक्ति)
1901	9.8	0.6	5.3
1911	10.6	1.6	5.9
1921	12.2	1.8	7.2
1931	15.6	2.9	9.5
1941	24.9	7.3	16.1
1951	24.9	7.9	16.7
1961	34.9	13.0	24.0
1971	39.5	18.7	29.5
1981	46.9	24.8	36.2
1991	63.86	39.42	52.11

2. **स्त्री शिक्षा की समस्याऐं :**

स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है फिर भी निम्नलिखित समस्यायें हैं -

1. स्त्रियों की स्थिति में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद अत्याचारी एवं अप्रगतिशील विचारों वाला पुरुष वर्ग नारी की महत्ता को स्वीकार नहीं करता है।
2. भविष्य में होने वाली सन्तान भले ही निरक्षर रह जाये लेकिन पुरुष नारी शिक्षा का विरोध करके अट्टाहस करता है।
3. वह अपनी रुढ़िवादिता धार्मिक संकीर्णता एवं नारी जाति पर शासन करने की चिरकाल से विरासत में मिलने वाली धारणा का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं है जबकि वर्तमान में आधुनिक युग विज्ञान का युग है। विज्ञान ने अनेक रुढ़िवादी विचारों, धार्मिक अन्धविश्वासों एवं प्राचीन परम्पराओं को खण्ड-खण्ड करके सारहीन सिद्ध कर दिया है किन्तु अज्ञानता के

कूप में पड़े हुये करोड़ों भारतीय अब भी उनसे चिपटे हुये हैं वे अब भी प्राचीन विचारों एवं विश्वासों का पोषण एवं समर्थन करते हैं। फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा अपने सीमित एवं संकुचित दायरे से बाहर नहीं निकल पा रही है। इसके निम्न कारण हैं।

(अ) प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण करने में गर्व का अनुभव करने वाले अनेक भारतीय पर्दा प्रथा में अब भी विश्वास करते हैं और उसका परित्याग करने में अपनी और अपने कुल की मान-हानि समझते हैं। अतः वे अधिक आयु की बालिकाओं के विद्यालय जाने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

(ब) अन्ध विश्वासों के शिकन्जे में जकड़े हुये अनेक हिन्दू बालिकाओं का अल्प आयु में विवाह करना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं। अतः वे भारतीय व्यस्कता अधिनियम का एवं बाल विवाह निषेधक अधिनियम का उल्लंघन करके भी अपने कर्तव्य का पालन करने में संकोच नहीं करते हैं। परिणामतः बालिकाओं का शिक्षा से वंचित रह जाना स्वाभाविक है।

(स) रुढ़िवादी विचारों के सीमित दायरे में निवास करने वाले अनेक हिन्दू स्त्री का उचित स्थान घर के अन्दर मानते हैं। अतः उनके मतानुसार बालिकाओं को घरेलू हिसाब-किताब के लिए थोड़ा सा अक्षर ज्ञान ही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त उनकी धारणाऐं हैं कि बालिकाऐं शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् समानता एवं स्वतन्त्रता का दावा करने लगती हैं। उनके विचार से यह स्त्री धर्म की प्रतिकूलता एवं चरित्रहीनता का सूचक है। अतः वे बालिकाओं की शिक्षा के विरोधी हैं।

(द) धार्मिक कट्टरता की भावना से सरावोर अनेक हिन्दू रजोदर्शन से पूर्व कन्याओं का विवाह करना धार्मिक कृत्य मानते हैं। ऐसे हिन्दुओं का स्मृतिकारों के इस नीति वचन में अभिचल विश्वास है -

"प्राप्तेतु दशमें वर्षे यस्तु कन्या न यक्षति
मासि-मासि रजस्यतस्यः पिता पिवति शोणितम्"

यानि कन्या के दशवें वर्ष में पहुँचने पर जो पिता उसका विवाह नहीं करता है वह प्रतिमास उसका लाल रज पीता है। अतः रजोदर्शन से पूर्व विवाह हो जाने पर बालिकाओं की शिक्षा का स्थगन अनिवार्य है।

4. स्त्री शिक्षा की एक अत्यन्त गम्भीर समस्या अपव्यय एवं अवरोधन ही है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन अधिक है। पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह का प्रचलन, प्राचीन विचारों एवं परम्पराओं में विश्वास, धार्मिक सिद्धान्तों एवं अन्धविश्वासों में आस्था और बालिकाओं के शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण के फलस्वरूप बालिकाऐं अपने को विवशता से इतना उलझा हुआ पाती हैं कि हार्दिक अभिलाषा के बावजूद वे बालकों के समान दीर्घकाल तक ज्ञान का अर्जन नहीं कर पाती हैं।

बालिका विद्यालय का अभाव, यातायात के साधनों का अभाव, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली का प्रचलन, विद्यालयों में नीरस शिक्षा विधियों का प्रयोग, बालिकाओं के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम का अभाव और दिशा निर्देशन का शिक्षित अभिभावक न होने के कारण अभाव इत्यादि कारणों के कारण स्त्री का अपव्यय एवं अवरोधन होता है।

5. स्त्री शिक्षा की पांचवी समस्या दोषपूर्ण पाठ्यक्रम की है क्योंकि अधिकांशतः बालकों एवं बालिकाओं के समान पाठ्य विषय हैं। हाँ इतना अवश्य है कि बालिकाओं को संगीत, चित्रकला, गृह विज्ञान जैसे कुछ वैकल्पिक विषयों का

अध्ययन करने की सुविधा उपलब्ध है किन्तु इससे न तो उनका कोई तात्कालिक हित होता है और न दूरकालिक। अतः दोषपूर्ण पाठ्यक्रम के अनेक कारण हैं।

(अ) यह शिक्षा ज्ञान प्रधान, पुस्तक प्रधान एवं अव्यवहारिक होने के कारण बालिकाओं में समाज की बदलती हुई परिस्थितियों से अनुकूल न करने की सामर्थ्य का विकास नहीं करती हैं।

(ब) दोषपूर्ण पाठ्यक्रम के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा बालिकाओं को गृहस्थ जीवन के लिए तैयार नहीं करती है और उनको पारिवारिक उत्तरदायित्वों को वहन करने की क्षमता प्रदान नहीं करती है।

(स) यह शिक्षा बालिकाओं को सब प्रकार के प्राकृतिक साधनों, रंगबिरंगे वस्त्रों एवं आभूषणों से सज संवर कर कामिनी या मोहनी बनने में और पुरुषों को रिझाने में दक्ष बना देती है जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज का नैतिक स्तर गिरता चला जा रहा है।

(द) इस प्रकार की शिक्षा महिलाओं में बेरोजगारी की समस्या को उतना ही विकराल रूप प्रदान करती जा रही है जितना कि वह पुरुषों को बेरोजगरी की समस्या को प्रदान कर चुकी है। मनुष्यों के लिए बेरोजगारी हानिकारक है, पर स्त्रियों के लिए भयंकर है।

6. राधाकृष्णन कमीशन के अनुसार स्त्री शिक्षा की वर्तमान पद्धति पुरुषों की आवश्यकताओं पर आधारित होने के कारण उनको दैनिक जीवन की व्यवहारिक समस्याओं का समाधान करने की योग्यता प्रदान नहीं करती है।

7. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के अनुसार - "स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा उस जीवन के लिए पूर्णतया निरर्थक है जो उनको व्यतीत करना है। यह शिक्षा न केवल अपव्यय है वरन बहुधा उनकी निश्चित असमर्थता का कारण है।

8. दोषपूर्ण शिक्षा प्रशासन के कारण स्त्रियों की शिक्षा के विस्तार में भारी अड़चने हैं। दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि दिल्ली, पंजाब, बिहार, बंगाल, हैदराबाद जैसे राज्यों को छोड़कर स्त्री शिक्षा के प्रशासन का भार पुरुष अधिकारियों पर है। वह भी बिना प्रशिक्षण के

अधिकारी सीट पर बैठ उसकी रक्षा कर रहे हैं एवं पुरुष होने के कारण न तो उनकी स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा में विशेष रुचि होती है और न उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं की जानकारी।

9. सरकार द्वारा स्त्री शिक्षा की उपेक्षा उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है क्योंकि सरकार की जितनी रुचि बालकों की शिक्षा में उसकी कई गुना कम स्त्रियों की शिक्षा में है। अतः सरकार बालकों की शिक्षा को प्रोत्साहित और स्त्रियों की शिक्षा की निरुत्साहित करती है। क्योंकि यदि सरकार को कभी व्यय में कमी करने की आवश्यकता पड़ती है तो वह इस कमी को पूर्ण करने के लिए बालकों की शिक्षा के बजाय बालिकाओं की शिक्षा से करती हैं। उदाहरणार्थ - भारत-चीन के युद्ध के समय जब देश में आर्थिक संकट की घोषणा की गयी तब सब राज्यों ने इस संकट का सामना करनेके लिए बालिका शिक्षा के व्यय में कटौती की और यह कटौती 15 लाख रूपये की थी। यह कितनी हास्यास्पद नीति है एक ओर तो सरकार स्त्री शिक्षा के प्रसार को प्राथमिकताओं की सूची में स्थान देती है और दूसरी ओर उस पर व्यय किये जाने वाले धन में कमी करती है।

10. स्त्री शिक्षा की दशवीं समस्या अध्यापिकाओं का अभाव है। अध्यापिकाओं के अभाव के कारण ही स्त्रियों में शिक्षा का कम प्रसार होने के कारण शिक्षित स्त्रियों का अभाव है जो स्त्रियाँ शिक्षित भी हैं उनमें से अनेक इच्छा होते हुये भी नौकरी नहीं कर पाती हैं। इसके कारण उनके माता-पिता, पति, सास-ससुर हैं जो कि नौकरी करवाना अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते हैं।

11. अधिकांश स्त्रियाँ उसी गाँव में नौकरी चाहती हैं जिसमें वे निवास करती हैं। क्योंकि अन्य स्थानों पर सुरक्षा, आवास की सुविधाऐं प्राप्त होना कठिन होता है। यदि वे अविवाहित हैं तो उनके अभिभावक उनको अन्य स्थान पर नौकरी करने की अनुमति नहीं देते हैं।

12. अध्यापिकाओं के रूप में कार्य करने वाली कुछ स्त्रियाँ विवाह के उपरान्त पारिवारिक झंझटों में उलझ जाने के कारण नौकरी छोड़ देती है। कुछ स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ किसी ऐसे स्थान पर पहुँच जाती हैं जहाँ कि विचित्र वातावरण वाले विद्यालयों में उनकी कार्य करने की इच्छा नहीं होती है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो उत्तम आर्थिक स्थिति का वर प्राप्त हो जाने पर अल्पवेतन वाले अध्यापिका के पद पर कार्य करना अपना अपमान समझती हैं।

13. प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है क्योंकि स्थिति प्रशिक्षण की व्यवस्था केवल नगरों में है। अतः आर्थिक एवं अन्य कठिनाई के कारण उन नगरों से दूर निवास करने वाली अनेक स्त्रियाँ शिक्षित होने पर भी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाती हैं।

14. नगरों की अपेक्षा ग्रामों में अध्यापिकओं का विशेष रूप से अभाव है क्योंकि ग्रामों में जीवनयापन की सामान्य वस्तुओं की पूर्ति में अत्याधिक कठिनाई होती है। इसलिए ग्रामों की शिक्षित महिलाऐं इतनी योग्य नहीं होती हैं कि वे अध्यापिकाओं का कार्य कर सकें।

15. भारतीय जनता शिक्षा के सांस्कृतिक व सामाजिक महत्व को नहीं समझती हैं। अतः अधिकांश लोग बालिकाओं की शिक्षा निरर्थक व समय का अपव्यय समझते हैं। वह सोचते हैं कि बालिकाओं को विवाहोपरान्त घर गृहस्थी के काम में फँस जाना पड़ेगा। अतः उन्हें पढ़ाने लिखाने से कोई लाभ नहीं है।

3. उपसंहार :

मानव विधाता की सर्वोत्तम कृति है तथा मानव जीवन को समुचित रूप से परिष्कृत करके सार्थक बनाने का सशक्त माध्यम शिक्षा है।

शिक्षा ही मनुष्य को समस्त मानवीय गुणों से सम्पन्न करके अखिल विश्व के प्राणि मात्र में उसे गौरवपूर्ण उच्चतम श्रेणी पर आसीन करती है। विद्यार्थियों के शारीरिक विकास के साथ-साथ शिक्षा या सशक्त माध्यम ही विकासोन्मुख जाति की ओर उत्तरोत्तर गतिमान करतजे हुए उसे धैर्य विवेक सहिष्णुता,

सांस्कृतिक सम्पन्नता, बौद्धिक और सामाजिक सफलता आदि ऐसे मानवोचित गुणों से अलंकृत करते हुये उन्हें युगानुकूल समाज के परिवर्तित परिवेश में एक सुगम सहज और सुखमय जीवन जीवने की कला में निरणांत बनाकर आदर्श मानव की श्रेणी में पहुँचा देती है इसके लिए पुरुषों और स्त्रियों दोनों को शिक्षित होना आवश्यक है लेकिन आज यह स्थिति है कि अपने परिवार को चलाने के लिए पुरुष घर से बाहर रहता है जबकि स्त्री अधिकांशतः अपना समय बच्चों के पालन पोषण में लगाती है। इसलिए पुरुष की अपेक्षा स्त्री-शिक्षा अधिक आवश्यक है। कहा भी गया है कि पहली गुरु माता ही होती है इस तथ्य को अधिक विश्लेषित करने से वह एक मानव के रूप में निज के लिए एक संरक्षक अथवा अभिभावक के रूप में अपने कुटुम्ब के लिए एक प्रबुद्ध नागरिक के रूप में प्रजातान्त्रिक प्रशासन व्यवस्था के लिए एक सच्चे समाजसेवी के रूप में समाज के लिए अथवा एक उदभुद्ध नेता सजग प्रहरी या दिशा दाता के रूप में सम्पूर्ण मानव समाज सहित निज देश से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक के लिए लाभ का श्रोत बन सकता है। इसी दृष्टि से वर्तमान समय में देश प्रदेश में सुनियोजित शैक्षिक विकास हेतु सुलभ वित्तीय संसाधनों का अनुशासनिक प्रावधान किया जा रहा है। देश के परिवर्तित परिवेश और वर्तमान सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार की योजनाओं परियोजनाओं के क्रियान्वयन के साथ-साथ सामाजिक नीति में परिवर्तन एवं परिवर्धन के लिए सतत् प्रयत्न हेतु स्त्री-शिक्षा अति आवश्यक है।

भारत गाँवों का देश है। लगभग 70 प्रति जनसंख्या गाँव में निवास करती है। भारत की

सच्ची झाँकी गांवों में देखी जा सकती है। इसकी उन्नति नगरों पर नहीं अपितु गाँवों पर निर्भर करती है। जिसमें कि हर जाति के लोग निवास करते हैं जिसमें खासकर अनुसूचित जाति के लोग उच्च जाति के लोगों की सेवा काम काज आदि में लगे रहते हैं। शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं यदि शिक्षा दिलाना चाहते हैं तो मात्र लड़कों को। मात्र लड़कों की शिक्षा से हमारा देश उन्नति नहीं कर सकता है। इसके लिए प्रत्येक मानव को शिक्षित होना आवश्यक है। अतः ग्रामीण स्त्रियों को ग्रामोन्नति एवं देशोन्नति के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। महाकवि सुमित्रा नन्दन पंत ने भारत माता ग्रामवासिनी नामक कविता में ठीक ही कहा है कि भारत वर्ष का वास्तविक स्वरूप गांव में ही है। अभिभावकों का विचार है कि स्त्री-शिक्षा केवल उसके स्वतः के लिए नहीं बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए भी महत्वपूर्ण है। राजनीति के क्षेत्र में आज स्त्री राजदूत, मन्त्री, पद सम्पादिका, न्यायाधीश आदि अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर रही है। लोकतान्त्रिक देश में सरकार प्रत्येक व्यक्ति के हितों की रक्षा व उसके विकास में योगदान करती है। लोकतन्त्र में राष्ट्रीय सरकार का निर्माण जनमत के हाथों में है। जब हमारा समाज ही अशिक्षित होगा तो धर्म, वर्ग, जातिवाद, प्रदेशवाद, क्षेत्रवाद सम्पर्क की भावनाओं में बहकर धन के लालच में आकर उचित मतदान का निर्णय नहीं कर पायेगा और अनुपयुक्त व्यक्ति को देश की बागडोर सौंपकर देश की प्रगति की अपेक्षा उसे अवनति की ओर ले जायेगा। जिससे हमारे राष्ट्र और समाज का विकास रुक जायेगा।

बालिका कल की माता होती है। उसका कार्य पूरे परिवार के लिए खाना पकाने, खिलाने तथा उसकी तैयारी, रसोई को समेटने और गृहकार्यों को खत्म करना ही नहीं बल्कि बच्चों को पालन पोषण उज्जवल भविष्य का निर्माण माता के कंधों पर होता है। माता अपने बच्चों की प्रकृति, रुचियों, आवश्यकताओं के अनुरूप कैसे शिक्षा की व्यवस्था करे एवं किस प्रकार उनका मार्गदर्शन करें। आज के बच्चे कल के नागरिक होंगे। जिनका भविष्य कठिन आर्थिक परिस्थितियों में होता है। यह कार्य एक शिक्षित माता ही अच्छी तरह करसकती है। जो बालक के शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक

विकास में योग दे सकती है। इसके अतिरिक्त अपनी सभ्यता एवं संस्कृति, अपने अनुभवों व उपलब्धियों को सुरक्षित रखना होता है। स्त्री देश की संस्कृति, धर्म, साहित्य, कला व ज्ञान का स्तम्भ होती है। उसे शिक्षित बनाकर उसकी क्रियाशीलताओं को प्रबुद्ध और समोन्नति बनाया जा सकता है।

परिवार समाज की लघु इकाई है। बालक को नागरिकता की शिक्षा अपनी माँ के संरक्षण में ही प्राप्त होती है। समाज में रहने के लिए बालक एवं बालिका को सामाजिक गुणों का विकास, समाज की भाषा, रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार के तरीके और रीति-रिवाज आदि का ज्ञान उसे परिवार में माता से मिलता है। समाज द्वारा निश्चित नियम व सिद्धान्तों का पालन उत्तम चरित्र के निर्माण की शिक्षा का उत्तरदायित्व एक शिक्षित माता ही अच्छी तरह निभा सकती है। शिक्षा के अभाव में बच्चे का सामाजिक विकास उपयुक्त रूप में नहीं होगा। माता प्रेम, दया, त्याग की मूर्ति होती है। यह गुण समाज में प्रतिष्ठित शक्ति है। यह गुण बच्चों में स्वतः माँ से आ जाते हैं वह बच्चे को सृजन की प्रेरणा देती है। आज देश तेजी से प्रगति कर रहा है। स्त्री को शिक्षा से वंचित करना समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होगा और समाज का विकास अवरूद्ध हो जायेगा एवं भविष्य कर्णधारों की दशा सोचनीय होगी। अतः बालिका को शिक्षित करके मनुष्य का सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक गुणों का विकास किया जा सकता है। आज समाज सुधारक के रूप में मदर टेरेसा, मेघा पाटेकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

बदलते हुये समाज में, बदलते हुये स्त्री के रूप का अवलोकन करने के पश्चात अब इसका सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि दशाओं को समेटे हुये है। आज कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ उनकी ये दो बाँहें, दो चक्षु एवं दो पैर न पहुँचे हों। उन्होंने समाज के भ्रष्टाचार, सदाचार, अनाचार तथा दुराचार को अपनी सेवा के गुण से दूर किया है। अतः राजनेता के रूप में देश, प्रान्त या समाज की शासिका बनकर अपनी श्रेष्ठता भी प्रदर्शित की है। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त बुराईयों के निवारण का प्रयत्न किया है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के अनेक उपाय भी बताये हैं। आज कोई भी कोना उनके क्रियाकलापों से अछूता नहीं रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी-ऐसी

स्थितियाँ हुई हैं जिनके योगदान को समाज कभी भुला नहीं सकता। पूर्वी उत्तर प्रदेश में लड़कियों की शिक्षा की समस्यायें वहाँ की परिस्थितियों के परिपेक्ष में देखना होगा। यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ था पर आज नया दृष्टिकोण सामने आया है। समाज में नई मान्यताओं ने जन्म लिया है जिससे यह क्षेत्र शिक्षा के नये मानदण्डों को सामने लायेगा। ऐसी आशायें हैं कि बहुमुखी विकास की धारा फैलेगी और नया महिला शिक्षा का स्वरूप विकसित होगा।
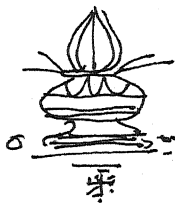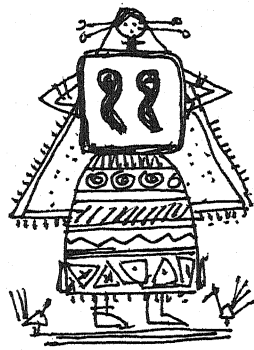
निष्कर्ष और सुझाव
****

शोध की भूमिका:

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह परिकल्पना की गई थी कि "हर पाँच वर्ष बाद प्रगति की समीक्षा की जायेगी और नई नीतियाँ तथा कार्यक्रम बनाए जायेंगे। इस परिकल्पना के अनुसार प्रत्येक

नई पंचवर्षीय योजना तैयार करते समय शिक्षा की कमियाँ और उपलब्धियों का पता लगाने तथा आगे आने वाले 5 वर्षों के लिए कार्यक्रमों का निर्णय करने के लिए इस नीति की समीक्षा की गई है। हालांकि इन समीक्षाओं से लाभदायक, प्रयोजन सिद्ध हुआ है। किन्तु अब यह महसूस किया जा रहा है कि वर्तमान ढाँचे की केवल समीक्षा करना और उसमें थोड़ा बहुत संशोधन करना ही काफी नहीं होगा। देश 21वीं शताब्दी के द्वार पर खड़ा है। जो बच्चे अब पैदा हो रहे हैं वे अपनी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा इस शताब्दी के अन्त तक पूरी कर लेंगे और एक ऐसी दुनियाँ में प्रवेश करेंगे जिसमें यह पहले से ही स्पष्ट हो चुका है कि मानव के इतिहास में उन लोगों के लिए जो भविष्य की चुनौतियों का सामना करने तथा परिवर्तन की गति को तेज करने में समर्थ होंगे, उन्हें अभूतपूर्व अवसर प्राप्त होंगे।

प्रौद्योगिकी (टेक्नोलोजी) के क्षेत्र में निरन्तर होने वाली क्रान्ति से पैदा होने वाली आवश्यकताओं के अतिरिक्त, भारत के सामने घरेलू चुनौतियाँ भी हैं जिनकी तात्कालिकता से इंकार नहीं किया जा सकता। देश इन भीतरी और बाहरी चुनौतियों का जितनी सफलतापूर्वक सामना करेगा उसी पर कल के नागरिकों के जीवन की दशा निर्भर होगी। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा ही सबसे अधिक प्रभावशाली साधन है। केवल शिक्षा ही गतिशील, संवेदनशील और सुसंगठित राष्ट्र के निर्माण करने के लिए लोगों को आवश्यक ज्ञान, प्रयोजन की चेतना और विश्वास की भावना से ओत-प्रोत कर सकती है ताकि राष्ट्र अपने लोगों का जीवन बेहतर, भरा पूरा और अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए साधन प्रदान करने के लायक बन सके।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका एवम् निष्कर्ष :

मानव के इतिहास में शिक्षा मानव समाज के विकास के लिए एक सतत् क्रिया और आधार रही है। मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा ज्ञान और कौशल दोनों को ही क्षमताओं के विकास के माध्यम से शिक्षा लोगों को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप बनने के लिए उन्हें शक्ति और लचीलापन प्रदान करती है। सामाजिक विकास के लिए प्रेरित करती है तथा उसमें योगदान देने के योग्य बनाती है। निःसन्देह इतिहास

से ज्ञात होता है कि राष्ट्रों के विकास में मानव संशाधनों द्वारा अदा की गई भूमिकाएं महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। इसके अतिरिक्त मानव संसाधनों का विकास करना, शिक्षा का मुख्य कार्य है।

शिक्षा व्यक्ति के विकास से अनिवार्य रूप से संबंधित रही है, फिर भी इस मौलिक कार्य के प्रति इसका दृष्टिकोण अब ऐसे सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर हो गया है जिनको संघर्ष और हिंसा को कम करने की दृष्टि से नया महत्व मिला है। ज्ञान के प्रसार की गतिशीलता के कारण अब व्यक्ति के लिए आजीवन अध्ययन करने और लगातार चलने वाली शिक्षा की संस्थाओं के विकास की संकल्पना पैदा हुई है। अध्ययन की अपनी प्रक्रिया और इसके अत्यधिक वैयक्तिक स्वरूप के संबंध में काफी कुछ ज्ञात हो चुका है। पहले से स्थापित विषयों की सीमाओं में अन्तरशास्त्रीय अध्ययन और अनुसंधान का कार्य किया जाने लगा है। शिक्षा की गुणवत्ता और उसका प्रसार बढ़ाने के लिए नई तकनीक का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाना शुरु हो गया है।

किसी भी देश में सामाजिक विकास के लक्ष्यों से वहाँ के लोगों की आकांक्षाओं की जानकारी मिलती है। भारत में ये लक्ष्य संविधान में दिए गए हैं जिसमें ऐसे समाज की परिकल्पना की गई हे जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समता पर आधारित है और राज्य को यह जिम्मेदारी सौंपी गई है कि वह सभी नागरिकों में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए प्रयास करे। संविधान में समाजवाद धर्म निरपेक्षता और लोकतन्त्र के लिए देश की प्रतिबद्धता को भी रेखांकित किया गया है।

वैयक्तिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास के विविध किन्तु एक दूसरे पर निर्भर लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन लोगों के वास्ते शिक्षा के एकीकृत कार्यक्रमों की समुचित व्यवस्था करना आवश्यक है, जो वैयक्तिक और आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों पर रह रहे हैं और जिनके विभिन्न भाषाइ, सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताएं हैं । विविधता में एकता को सुदृढ़ करने तथा देश के एक भाग से दूसरे भाग में आने जाने का सुकर बनाने के लिए ऐसे कार्यक्रमों में एक सामान्य

कोर पाठ्यचर्या रखनी होगी।

राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में लोकतान्त्रिक पद्धति से शिक्षा प्रणाली की अपनी भूमिका कारगर ढंग से निभा सकने के योग्य बनाने के लिए यह अनिवार्य हे कि सभीलोग शिक्षा का लाभ उठा सकें, इसे सुनिश्चित करने के अतिरिक्त यह व्यवस्था भी की जानी चाहिए कि लोगों की शैक्षिक उपलब्धियों का स्तर स्त्रियों और पुरुषों, सामाजिक वर्गों और विभिन्न भौगोकि क्षेत्रों में अधिक विषम न हो।

यदि स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए पर्याप्त उपाय नहीं किए जाते हैं तो आर्थिक दुर्बलताओं, क्षेत्रीय असंतुलन और सामाजिक अन्याय की खाई और गहरी होती जायेगी जिसके परिणामस्वरूप विघटनकारी तनाव बढ़ते जायेंगे। उचित शिक्षा के माध्यम से ही आर्थिक और सामाजिक विकास की उपलब्धि को सुकर बनाया जा सकता है तथा शीघ्र हासिल किया जा सकता है। मानव साधनों के विकास से अन्य सभी संसाधनों के उपयोग पर वृद्धिकारी प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि विकास के लिए निवेश के रूप में शिक्षा की संकल्पना को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है और इसीलिए वर्ष 1966 में प्रस्तुत शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट मेंशिक्षा को ही शान्तिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का एक मात्र साधन माना गया है। शिक्षा प्रणाली के विकास की योजना बनाने में समदृष्टि गुणवत्ता और प्रासंगिता का विशेष महत्व होता है। विश्वविद्यालयी शिक्षा पद्धति जो बड़े पैमाने पर सक्षम व्यावसायिक जनशक्ति प्रदान करती है, उत्पादकता को बढ़ाने तथा आर्थिक उत्पादन में वृद्धि करने में भी बहुत सहायक है। उच्चतर शिक्षा की एक दूसरी पद्धति भी है जिसमें उतनी ही संख्या में छात्र उत्तीर्ण होते हैं। लेकिन इनमें से अधिकांश कला के उदासीन शिक्षित स्नातक होते हैं जिनमें से अधिकतर या तो बेरोजगार रह जाते हैं अथवा रोजगार के योग्य होते ही नहीं और यही लोग सामाजिक तनाव पैदा कर सकते हैं तथा आर्थिक वृद्धि में बाधा डाल सकते हैं। बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराई गई उचित शिक्षा ही ऐसा साधन है जो राष्ट्रीय विकास में सहायक हो सकती है। यदि ये शर्तें पूरी नहीं होगी तो इसके विपरीत परिणाम भी निकल सकते हैं।

ऐसा उपयुक्त प्रतीत होता है कि सामान्य रूप से शिक्षा की भूमिका पर तथा विशेष रूप से महिला शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विचार विमर्श करते समय हमें शिक्षा पद्धति की सीमाओं का भी ध्यान रखना चाहिए अन्यथा शिक्षा पद्धति को उन कमियों के लिए दोषी ठहराया जा सकता है जो उसके नियन्त्रण के बाहर की होंगी। शिक्षा पद्धति शून्य में अथवा आधार के बिना नहीं टिक सकती। यह पर्यावरण की विशेषताओं द्वारा बहुत प्रभावित होती है। जब वह नीति निर्धारक आयोजक और प्रशासक इन दिशाओं में शिक्षा के महत्व को समर्थन देने के इच्छुक और समर्थ नहीं होंगे तब तक शिक्षा अपनी उत्तमता अथवा अपने लोकतान्त्रिक स्वरूप को कायम नहीं रख सकती। जब तक यह निर्णयकर्ता इस बात के कायल नहीं हो जाते कि शिक्षा भावी विकास के लिए एक महत्वपूर्ण निवेश है तब तक शैक्षिक कार्यों के लिए न तो आदमी ही आगे आयेंगे और न धन ही सुलभ हो सकेगा।

शैक्षिक योजना को सार्थक रूप से तभी प्रारम्भ किया जा सकता है जबकि समाज में निर्णय करने वाले इसकी मात्रा, गुणात्मक स्थान और काल से संबंधित उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करें और वह पद्धति बताएं जिसमें समता और श्रेष्ठता की माँग पूरी की जा सके और संसाधनों के कड़े दबाव में जिन्हें प्राथमिकता दी जा सके।

स्त्री शिक्षा की विषय-वस्तु और कार्य प्रणाली शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व के विकास की प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित की जा सकती है किन्तु तकनीकी, वैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों का जहाँ तक संबंध है शिक्षा को राष्ट्रीय
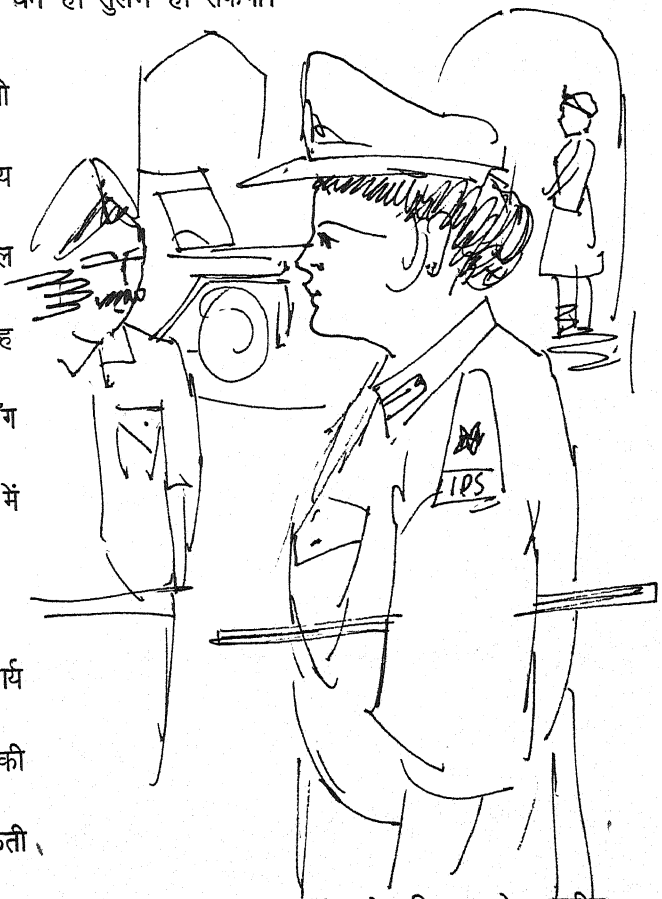
विकास और प्राकृतिक परिवेश को आधार बनाना होगा।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में स्वतन्त्रता के बाद सभी प्रकार की संस्थाओं की वृद्धि, दाखिलों की मात्रा में वृद्धि, शैक्षिक कार्यक्रमों के परिष्करण और विविधता के सन्दर्भ में पर्याप्त प्रगति हुई है।

यहाँ इस सच्चाई को कहने से कोई लाभ न होगा कि भारत में स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा में अपने अत्युत्तम तरीकों से विद्वान, इंजीनियर, तकनीशियन, डॉक्टर तथा उच्च कोटि के प्रबन्ध कार्मिकों को तैयार किया है जिनकी तुलना विश्व के श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों द्वारा तैयार किए गए अच्छे कार्मिकों से की जा सकती हे किन्तु यह भी सच है कि इस कोटि के थोड़े से लोगों की तुलना में काफी संख्या में उच्च शिक्षा की संस्थाओं में ऐसे लोग निकलते हैं जिनके पास थोड़ा बहुत पुस्तकीय ज्ञान और एक डिग्री होती है लेकिन उनमें स्वतः अध्ययन की बहुत कम क्षमता,घटिया भाषा तथा सीमित संप्रेषण क्षमता और सीमित विश्व दृष्टिकोण होता है तथा उनमें किसी प्रकार की सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जिम्मेदारी की प्रवृतित का भी अभाव रहता है।

प्रतिभावान और संवेदनशील विद्यार्थियों में भी जिन्हें बहुत कम लागत पर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों अथवा मेडिकल कालेजों जैसी उत्कृष्ट संस्थाओं में पड़ने का अवसर प्राप्त है। अपेक्षित सामाजिक जिम्मेदारी का भाव दिखाई नहीं देता। यही बात उच्च कोटि के स्कूलों में पढ़ छात्रों पर भी लागू होती है।

समकालीन शिक्षा व्यवस्था का विवरण परीक्षा प्रणाली के उल्लेख के बिना पूरा नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह न केवल छात्रों के भाग्य का निर्माण करती हे, बल्कि शिक्षा के सभी स्तरों पर उसकी विषय वस्तु, अभिविन्यास और गुणवत्ता का निर्धारण करती है। परीक्षा प्रणाली रटे रटाये अध्ययन तथा स्मरण शकित के आधार पर परीक्षार्थी के मूल्यांकन के अलावा वार्षिक आवर्तिता का एक ऐसा पर्यावरण बनाती है जिसमें छात्र वर्ष का अधिकांश भाग व्यर्थ व्यतीत करते हैं तथा अन्तिम तीन चार

महीनों में परिश्रम करते हैं। इसीलिए पढ़ाई में निरन्तर रूप से न लगे रहने का परिणाम यह होता है कि वर्ष के अन्त में मस्तिष्क पर असहनीय दबाव पड़ता है जिससे परीक्षाओं का बहिष्कार, प्रश्न पत्रों का पहले पता लगाना, सामूहिक रूप से नकल करना, मूल्यांकन कर्ताओं को रिश्वत देना तथा अन्य अनैतिक साधनों का प्रयोग होता है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में जनता तथा नियोक्ताओं के लिए उनकी डिग्रियाँ तथा ग्रेड सामान्य तौर पर विश्वसनीय सिद्ध नहीं होते तथा इससे उच्चतर शिक्षा की पूरी प्रक्रिया विकृत, दिशाहीन तथा निष्क्रिय हो गई है और काफी संख्या में युवक तथा महिलाएं बेरोजगार हो रहे हैं।

परिकल्पना का सत्यापन :

सभी प्रकार के विचारशील लोग मूल्यों की तेजी से हो रहे ह्रास तथा उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण से बहुत विक्षुब्ध हैं। वास्तव में मूल्यों की यह संकटग्रस्त स्थिति जिस प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रों में व्याप्त है उसी प्रकार स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में छात्रों और शिक्षकों में व्याप्त है। इसे एक बहुत खतरनाक विकास के रूप में माना जाता है।

सांस्कृतिक सामंजस्य के बावजूद जिसने शताब्दियों से भारतीय उप महाद्वीप का चरित्र चित्रण किया है, भारतीय राजनीतिक एकता केवल स्वतन्त्रता संग्राम के माध्यम से ही स्थापित हुई है। जाति, धर्म और क्षेत्रीय विचारधाराओं से उत्पन्न विघटनकारी शक्तियों की वजह से राष्ट्रीय एकता की प्रवृत्ति पर हाल ही में काफी दबाव पड़ा है। अतः व्यापक स्तर पर यह महसूस किया जा रहा है कि इस प्रवृतित के विपरीत प्रभावी उपाय किए जाएं। और लोगों को स्वतन्त्रता संग्राम, राष्ट्रीय एकता का महत्व, साम्प्रदायिक तथा जाति आधारित विघटन के खतरों तथा भारत की उस सामाजिक संस्कृति को मजबूत करने की आवश्यकता के बारे में शिक्षित किया जाए जिसे विभिन्न पृष्ठभूमि वाले लोगों ने मिलकर विकसित किया है। यह महसूस किया जाता है कि यह वर्तमान स्थिति शिक्षा प्रणाली के असफल होने

का सूचकहै तथा कम से कम अभी से ही यह देखने के लिए हर सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए कि भावी पीढ़ी अलगाववाद की प्रवृत्तियों से मुक्त हो।

न तो कोई व्यक्ति ओर न ही कोई राष्ट्र आत्म-विश्वास तथा गौरव की अनुमति के बिना जिन्दा रह सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत कम लोग यह जानते हैं कि अपने अतीत और वर्तमान के आधार पर हम विश्व में किसी के भी सामने अपनी भारतीयता को प्रमाणित कर सकते हैं तथा विकसित देशों के श्रेष्ठ लोगों के आचरण के समान कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हैं। निश्चित है कि भारत भीख का कटोरा हाथ में लिए इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश नहीं कर सकता। अतः युवकों को अपनी पूरी शक्ति का बोध कराने तथा उन्हें अपने कर्तव्य की जानकारी देने के लिए तत्काल प्रयास किए जाने चाहिए।

स्त्री उच्च शिक्षा के वर्तमान श्रेष्ठ केन्द्रों को आधुनिक बनाया जाए और हमारी प्रबुद्ध, उत्कृष्ट तथा रचनात्मक जन शक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नए केन्द्रों की स्थापना की जाए। यह निश्चय करना भी आवश्यक है कि समस्त वातावरण को आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के व्यापक प्रसार के माध्यम से बदला जाए। पर्यावरण में गुणात्मक परिवर्तन के अभाव में शिक्षा के श्रेष्ठ केन्द्रों को रुढ़िवादी, मंदगति तथा निष्क्रिय जनसमूह नष्ट कर देगा।

यह देखा गया है कि अधिकांश छात्र उन चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार नहीं है जो रचनात्मकता नव परिवर्तन के लिए उनकी शक्ति का विकास कर सकें क्योंकि शिक्षा की समूची पद्धति कक्षा कार्य और परीक्षाओं से परिभाषित है जो रटंत अध्ययन और पुनरावृत्ति मूलक अभ्यासों पर बल देती है। निःसन्देह इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा प्रविधि, पाठ्यचर्चा एवं शिक्षण सामग्रियों में आमूलचूल परिवर्तन किया जाए। फिर भी ये सब काफी नहीं होंगे। क्योंकि इसके लिए अध्यापकों के अनुस्थापन, कार्य सम्बन्धी नीति, विषय ज्ञान और कौशलों में परिवर्तन करने के लिए कुछ न कुछ करना ही होगा

इसके लिए उन्हें शिक्षण की अपेक्षा अधिगम प्रणाली में अधिक रचनात्मक रूप से कार्य करना होगा। इसके लिए उन्हें नए विचारों और नयी तकनीकों के साथ निरन्तर कार्य करना होगा। और उनके लिए संघर्षरत रहना होगा।

संस्थाओं की संख्या और नामांकन में वृद्धि व सुझाव :

पिछले पैंतीस वर्षों में भारत में शैक्षिक संस्थाओं की संख्या 2.3 लाख से बढ़कर तीन गुना यानी कि 6.9 लाख हो गयी है। 1950-83 के दौरान सामान्य शिक्षा के लिए डिग्री पूर्व कालेजों की संख्या में काफी तेजी से बढ़ी है। इस समय देश में 5246 कालेज और 140 विश्वविद्यालय हैं। कालेजों और विश्वविद्यालयों की वृद्धि दर प्रति वर्ष छह प्रतिशत से अधिक रही है। लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश में इनकी संख्या इतनी कम है कि दशा सोचनीय बनी हुई है। इस ओर बहुत कुछ कारण शेष है।

नामांकन :

महिला उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों की संख्या में जो बढ़ोत्तरी हुई उसकी स्थिति बड़ी रोचक है। 1950-82 में प्रतिवर्ष 9.7 की दर से वृद्धि हुई है। लेकिन हर दशक के अनुसार जो नामांकन हुआ है उससे यह पता चलता है कि यद्यपि 1950से 1959 और 1960 से 1969 में नामांकन में प्रतिवर्ष क्रमशः 12.4 और 13.4 प्रतिशत वृद्धि हुई, 1970 से 1979 में इसमें केवल 3.8 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। इस प्रकार ऐसा लगता है कि इस स्तर पर विद्यार्थियों की संख्या कम होने लगी है।

उच्च शिक्षा स्तर के लगभग सभी संकायों और विशेषता पाठ्यक्रमों में होने वाले नामांकनों में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए कला विषयों में जहाँ नामांकन कम हुआ है वहीं पिछले दशक में वाणिज्य संकाय में अधिक हुआ है। सामान्य शिक्षा के लिए जो नामांकन (4.5) हुआ है उसकी तुलना में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए नामांकन में प्रतिवर्ष 2.5 प्रतिशत की वृद्धि रही है। आयुर्विज्ञान (39.1 प्रतिशत) और इंजीनियरी, तकनीकी तथा वास्तुकला (36.6 प्रतिशत) के पाठ्यक्रम व्यावसायिक

शिक्षा में हुई बढ़ोत्तरी का एक बड़ा भाग है। कृषि और पशु चिकित्सा विज्ञानों के लिए नामांकन में वृद्धि प्रतिवर्ष क्रमशः 5.4 प्रतिशत और 2.6 प्रतिशत रही है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में जो नामांकन हुआ है उसमें वृद्धि प्रति वर्ष 2.6 प्रतिशत रही है। शिक्षक प्रशिक्षण में लड़कियों का नामांकन अधिक तेजी से बढ़ा, जिसकी दर 5.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही।

1960-83 में इंजीनियरिंग पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों की संख्या 43000 से बढ़कर 1,12,000 यानी की 2.6 गुना हुई। यद्यपि लड़कियों के नामांकन में सत्रह गुना वृद्धि हुई, इसकी कुल संख्या पुरुषों के नामांकन के लगभग 5 प्रतिशत तक की रही।

समीक्षा :

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा पद्धति को पूरी तरह बदल कर नया रूप देने की कल्पना की गई थी। जिससे कि वह लोगों के जीवम से अधिक संबंध हो सके, वह बढ़े हुए शैक्षिक अवसर दे सके, सभी स्तरों पर शिक्षण की गुणता/स्तर में सुधार के लिए लगातार गहन प्रयत्न शुरु किए जा सकें, विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकास पर बलदिया जा सके और नैतिक और सामाजिक मूल्यों का पोषण किया जा सके। शिक्षा नीति का लक्ष्य एक ऐसा वातावरण बनाना था जिससे कि ऐसे चरित्रवान और योग्य युवा पुरुष और स्त्री नागरिकों की पीढ़ी तैयार की जा सके जो राष्ट्रीय सेवा और विकासके प्रति वचनवद्ध हो। यह सुस्पष्ट है कि हम इन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सके हैं। इसी
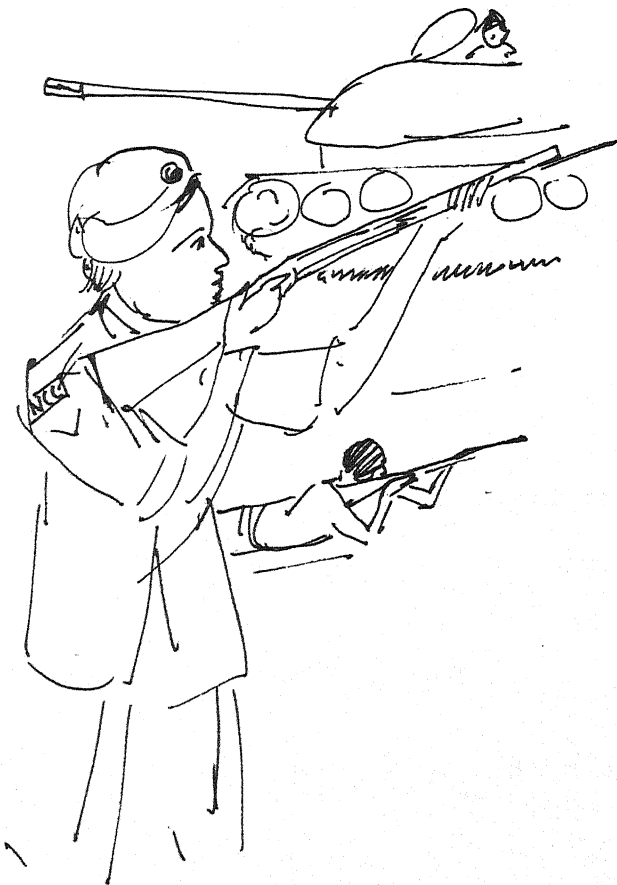
बीच आर्थिक और सामाजिक वृद्धि की प्रगति और विज्ञान तथा टेक्नालाजी के विकास से शिक्षा की नई आवश्यकताएं पैदा हो गई हैं।

कल के विश्व का समाज सूचना और टेक्नालाजी से समृद्ध होगा और उसके लिए शिक्षा के नए दृष्टिकोणों/नीतियों की आवश्यकता होगी। सीखने की क्षमता बढ़ाना ज्यादा महत्वपूर्ण है बजाये इसके कि क्या सीखा जा रहा है। जीवनपर्यन्त और आवर्ती शिक्षा उस समय की माँग होगी। सूचना टेक्नोलाजी मनुष्य के क्रियाकलाप के हरेक क्षेत्र में छा गई है और उससे शिक्षा के उद्देश्यों को बढ़ाने और उन्नत करने तथा शिक्षा प्रक्रियाओं को काफी कुछ बदलने की संभावना पैदा कर रही है। भारत में हम एक ऐसे समाज के निर्माण की आशा कर रहे हैं जिसमें हमारे देश के करोड़ों लोग हमारे संविधान में रखे गये महान सिद्धान्तों के प्रति वचनवद्ध होंगे। जिससे कि स्थिति की समानता और काम करने के समान अवसरों के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। हम एक ऐसे विश्व में रह रहे हैं जहाँ संचार साधनों ने दूरी के साथ साथ कुछ हद तक राष्ट्रीय सीमाओं को भी मिटा दिया है परन्तु इस विश्व में ही पर्यावरणीय और न्यूक्लीय संकट का खतरा भी बना हुआ है। इस संदर्भ में मूल्यों के लिए शिक्षा ने एक नई दिशा और तात्कालिकता ग्रहण कर ली है। इस प्रकार हम एक साथ दो कठिन कार्यों की चुनौती का सामना कर रहे हैं। एक कार्य तो हरेक व्यक्ति को अच्छी शिक्षा देना है ताकि वह अपनी पूरी क्षमता का विकास कर सके और दूसरा कार्य इसके साथ ही साथ शिक्षा की विषय वस्तु और प्रक्रिया को इस प्रकार बदलना है कि वह भावी आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

ऐसा करते हुए यह भी आवश्यक होगा कि शिक्षा के अभिविन्यास को देश में सामाजिक और आर्थिक विकास की वांछित दिशा में हुई प्रगति से सम्बद्ध किया जाए। विशेषकर महिला शिक्षा के पक्षधर बनकर तभी यह स्वयं साकार हो सकेगा।

शिक्षा और उसकी सभी शाखाओं को तब तक पर्याप्त रूप से नहीं बदला जा सकता जब तक कि पूरी सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था के बने रहने के लिए ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता न हो। अब

समय आ गया है कि कार्यान्वयन के व्यवस्था तन्त्र पर सावधानी से विचार किया जाए और नीतियाँ बनाने, कार्यों की प्राथमिकताएं तय करने, संसाधनों का आवंटन करने, अतः क्षेत्र के समन्वय को सुनिश्चित करने, मानको को लागू करने और प्रबोधन तथा मूल्यांकन का प्रबन्ध करने के लिए और अधिक प्रभावी व्यवस्था तंत्र तय किया जाए। नीति विषयक संकल्प, योजनाएं और सार्वजनिक घोषणाएं तब तक निरर्थक आश्वासन ही बनी रहती हैं जब तक कि उन्हें पूरा करने के उपाय नहीं किए जाते।

लड़कियों की स्कूली शिक्षा और उसके मुकाबले उच्च शिक्षा के सापेक्ष महत्व के बारे में शिक्षाविदों के विचारों में विरोध है। लेकिन इस सम्बन्ध में यह व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि किसी देश की उच्च शिक्षा की स्थिति को ही उसके भविष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेत कहा जा सकता है। विश्वविद्यालयों के कुछ कालेजों तथा संकायों ने अनुसंधान कार्य करके और विज्ञान पुरुषों तथा महिलाओं की सहायता से उक्त विकास एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समर्थन देने में निर्णायक भूमिका निभाई है, फिर भी विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की सामान्य स्थिति राष्ट्र के लिए भारी चिंता का विषय है।

जहाँ तक महिला संस्थाओं की संख्या का प्रश्न है, हमारे देश में उच्च शिक्षा का एक विशाल तन्त्र विद्यमान है लेकिन इसका एक मात्र कारण हमारे देश की विशाल जनसंख्या है। संबंधित आयु वर्ग के केवल 4-8 प्रतिशत छात्र उच्च शिक्षा में नामांकित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का विस्तार आंशिक रूप से हो पाया है। इसके अलावा, सामान्य शिक्षा के विषय में तो नामांकन का पैटर्न एकदम विषम है। विभिन्न स्तरों पर विज्ञान, शिल्प विज्ञान और अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहन देने से सम्बन्धित प्रयासों में अधिक सफलता नहीं मिल पायी है।

5000 विभिन्न कालेजों को दी गई सुविधाओं में काफी अन्तर है और गुणात्मक विकास क्षमता की दृष्टि से कुल मिलाकर उनका स्तर बहुत नीचे है। न तो कालेज और न ही विश्वविद्यालय शैक्षिक जरुरत पर ठीक तरह से विचार करने के बाद खोले जाते हैं। कई वर्षों तक ये विश्वविद्यालय

अनुदान आयोग को धन जुटाने वाली केन्द्रीय सरकार के बीच विवाद उत्पन्न होने का खतरा रहता है। ऐसे गतिरोध का अंतिम समाधान आमतौर पर यही होता है कि उक्त प्रायोजकों से कुछ सांकेतिक रियायतें प्राप्त करने के बाद कोई समझौता कर लिया जाता है। भारतीय स्थिति से परिचित कोई भी व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं करेगा कि इसके बावजूद कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को शिक्षा का उच्च स्तजर बनाए रखने का कार्य सौंपा गया है और इस सम्बन्ध में उसने पूरा प्रयास भी किया है फिर भी परिणाम एकदम असंतोषजनक रहा है। यह एक दुर्भाग्य की बात है। घटिया स्तर की शिक्षा देने से अनेक छात्रों/छात्राओं का ही नुकसान होता है। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयाग को पूरा समर्थन दिया जाना चहिए कि वह भय या पक्षपात के बिना अपने सांविधिक कर्तव्य का पालन करें। विश्वविद्यालय तथा कालेज जातिवाद, क्षेत्रवाद तथा गुटबंदी फैला रहे हैं। ये संस्थाएं (कुछ प्रतिष्ठित संस्थाओं को छोड़कर) वस्तुतः युद्ध क्षेत्र बन गई हैं जिसमें शिक्षकों तथा अन्य स्टाफ द्वारा समर्थन प्राप्त राजनीतिक एवं अन्य दल शक्ति और श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रायः संघर्ष करते रहते हैं। कुछ कुलपतियों का कार्यकाल तो इसी मोर्चेबन्दी या घर पर काम करते हुए व्यतीत हो जाता है। किसी विश्वविद्यालय की उपलब्धि का मूल्यांकन उसके अनुसंधान की गुणता स्तर या उसके छात्रों की योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि वह कार्यक्रम के अनुसार परीक्षाएं करवा देता है और विश्वविद्यालय को जबरन बंद नहीं होने देता है।

कार्यक्रम के अनुसार भी एक वर्ष में वास्तविक कार्य दिवसों की संख्या वांछित स्तर से बहुत कम होती है। उच्च शिक्षा प्रणाली की आन्तरिक दक्षता भी बहुत कम है। इसका प्रमाण केवल घटिया स्तर के पाठ्यक्रमों से ही नहीं मिलता बल्कि कक्षाएं छोड़कर चले जाने वाले तथा परीक्षाओं में फेल होने वाले अनेक छात्रों से भी मिलता है जिसकी कुछ संख्या नामांकित छात्रों के 59 प्रतिशत से भी अधिक है। यह साधनों की पूरी बर्बादी है।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने वालों में से अनेक छात्र-छात्रायें तृतीय श्रेणी में रखे जाते हैं - घटिया स्तर का यह एक दूसरा सूचक है। "तृतीय श्रेणी" में पास होने वाले स्नातक ही सर्वाधिक बेरोजगार पाये

जाते हैं। माध्यमिक शिक्षा के अनुसार उच्च शिक्षा के मामले में परीक्षा में तत्काल सुधार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान प्रणाली अब भरोसेमन्द नहीं रह गई है। स्थिति यहाँ तक आ गई है कि एक विश्वविद्यालय दूसरे विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त ग्रेडिंग पर स्वतः विश्वास नहीं करता और सरकारी एवं निजी क्षेत्रकों के सभी बड़े नियोजक उम्मीदवारों की योग्यता जाँचने के लिए उनकी परीक्षा लेते हैं। परीक्षा सुधार के लिए पहले किए गए प्रयासों में कोई अधिक प्रगति नहीं हुई है। इसका मुख्य कारण यह हे कि आंतरिक मूल्यांकन पद्धति का विरोध शिक्षकों तथा छात्रों दोनों द्वारा

किया जाता है। शिक्षा/शिक्षिकायें तो इसका विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि सामयिक मूल्यांकन के कारण उनको अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। और छात्रों द्वारा इस विरोध करने का कारण केवल यही नहीं है कि वे सभी शिक्षकों की निष्पक्षता में विश्ववास नहीं करते बल्कि यह भी हे कि उन्हें कार्य का उचित स्तर बनाए रखने के लिए साल भर मेहनत करनी पड़ेगी।

विश्वविद्यालय पद्धति में व्यापक रूप से अनुसंधान कार्य किया जाता है और उसे खर्चीला समझा जाता है। लेकिन राष्ट्रीय निविष्टियाँ विश्वविद्यालयों के बाहर प्रयोगशालाओं में लगाई गई है। इस प्रकार मुख्य कार्य की सुविधाएं नहीं मिल पाती हैं। इस स्थिति को ठीक करना जरुरी है क्योंकि उच्च कोटि के अनुसंधान कार्य के बिना स्नातकोत्तर शिक्षा की न तो पद्धति और न ही उसकी गुणता-स्तर में सुधार हो पाएगा। शैक्षिक अनुसंधान तथा शिल्प विज्ञान के निष्कर्षों का प्रयोग करते हुए ज्ञान के विस्तार के अनुरूप पाठ्यचर्या में परिवर्तन करने के लिए संगठित कार्य आवश्यक है। वास्तव में कालेज तथा

विश्वविद्यालय शिक्षा की आलोचना प्रायः इसलिए की जाती है क्योंकि वे अध्यापन पर अत्यधिक जोर देते हैं। जिसमें वर्षों पहले तैयार किए गए पुराने "नाट्स" लिखवाए जाते हैं। शिक्षा प्रयोगपरक हो विशेषकर महिला शिक्षा उस क्षेत्र से जुड़ी हो तभी लाभ सामने आयेंगे।

स्कूलों की पाठ्यचर्या के मूल्यांकन, नवीनीकरण, पूर्व परीक्षण तथा परिवीक्षण करने के लिए तो राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद और राज्य शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद जैसी संस्थाएं मौजूद हैं लेकिन विश्वविद्यालयों एवं कालेजों की पाठ्यचर्या को अद्यतन बनाने के लिए आजकल ऐसी कोई संस्थागत व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। परिणामस्वरूप जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध पाठ्यक्रमों को तैयार करने का प्रयत्न किए बिना और छात्रों के व्यक्तित्व तथा योग्यता एवं शिक्षा क्षमताओं के बहुमुखी विकास के बिना कला औा मानविकी विषयों में एक ही प्रकार की पढ़ाई जारी है। विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान के मामले में भी, अमूर्तता के विभिन्न स्तरों पर मुख्यतः संकल्पनाओं एवं आधारभूत सिद्धानतों की व्याख्या करने वाले पाठ्यक्रम तैयार किए जाते हैं। लेकिन सिद्धानत और वास्तविकता को संबंध करने के लिए किट, उपकरण तथा यन्त्रों के रूप में प्रयोगशालाओं में सहायक व्यवस्थाएं उपलब्ध नहीं होती हैं।

शिक्षकों तथा छात्रों के बीच तालमेल और अनौपचारिक सम्पर्क के अभाव में सामूहिक जीन, सांस्कृतिक कार्यकलाप तथा खेलकूद या तो होते ही नहीं हैं अथवा उनका उपयोग बहुत कम किया जाता है। पूर्वोक्त बातों की दृष्टि से राष्ट्रीय समस्याओं या मूल्यों पर विचार करने की गुंजाइश बहुत कम है। यही कारण है कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन एवं अध्ययन करना एक अंशकालीन कार्य से अधिक नहीं है जिसका मुख्य उद्देश्य डिग्री प्रदान करना है और जिसका भरोसा और मूल्य समाप्त हो चुका है।

विश्वविद्यालय-कुलपति जो सभी समितियों और परिषदों का अध्यक्ष होता है को डावांडोल परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है क्योंकि उसे विश्वविद्यालय को चलाये रख्ने के लिए बार बार

सरकारी अधिकारियों के पास जाना पड़ता है। दूसरी तरफ उसे उन निकायों में, जिनके सदस्य विश्वविद्यालय के कार्यकरण पर लिए गए निर्णय के प्रभाव को लिये जिम्मेदार नहीं होते, अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए कदम कदम पर समझौता करना पड़ता है। कुलपति कालेज को भी आदेश नहीं दे सकता क्योंकि कालेज भी बड़े जोश और शक्ति से अपनी स्वायत्तता की रक्षा करते हैं।

जहाँ तक अन्य क्षेत्रकों का सम्बन्ध है, उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध साधन बिल्कुल अपर्याप्त है। इसलिए ऐसे साधनों के विस्तार तथा उनमें गुणात्मक सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रसंग में विश्वविद्यालय और राज्य तथा केन्द्र सरकारों की जिम्मेदारी का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करना जरुरी है ताकि समाकलित रूप में धन की व्यवस्था की जा सके तथा अनुशासन को लागू करते हुए और शिक्षा की विषय वस्तु एवं क्वालिटी की देखभाल करते हुए भौतिक सुविधाओं के रखरखाव तथा विकास की जिम्मेदारी का कारगर ढंग से निर्वाह किया जा सके।

हालाँकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि धन की व्यवस्था करने की प्रक्रियाओं को स्थिर करने की आवश्यकता है, फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि उक्त शिक्षा के लिए जितनी इम्दाद आज दी जा रही है उसका औचित्य नहीं है। उच्च शिक्षा की जनशक्ति का उपयोग करते हुए विकास विभागों एवं अन्य साधनों से बढ़ाई गई फीस, सामाजिक चंदे तथा अन्य अंशदानों के माध्यम से और अधिक साधन जुटाने के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। यह कहा जा सकता है कि यदि किसी विकास क्षेत्र के लिए विपुल धनराशि अर्थात 1000 करोड़ रूपये आवंटित किए जाते हैं तो कुशल कामगरों से लेकर इंजीनियरों, डिजाइनरों तथा अनुसंधानकर्ताओं तक अनेक व्यक्तियों को रोजगार हासिल होगा। तकनीकी संस्थाओं अथवा विश्वविद्यालयों के अल्प बजट द्वारा इस प्रकार की जनशक्ति का सृजन नहीं किया जा सकता है। जनशक्ति विकास पर आवंटित धनराशि का कुछ प्रतिशत खर्च किया जाना चाहिए और उसे परियोजना संबंधी प्रलेखों में इसी रूप में दिखाया जाना चाहिए तथा उसे उपयुक्त नियोजन के लिए शिक्षा क्षेत्रक का अंतरित कर दिया जाना चाहिए।

तकनीकी शिक्षा :

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के समय से लेकर आज तक जिन कार्यक्रमों के कारण देश में नवीन परिवर्तन आया है और उसके उत्पादन में विविधीकरण एवं वृद्धि हुईहै वे मुख्यतः भारत की तकनीकी शिक्षा की संस्थाओं द्वारा सृजित जन शक्ति द्वारा सम्भव हो सके हैं। इन संस्थाओं के कुछ स्नातक विदेश भी चले गए हैं और विश्व के अनेक भागों में टेक्नालाजी के प्रमुख क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं इसके बावजूद काफी उपलब्धियाँ हुई हैं। इस पद्धति की अनेक समस्याएं हैं जिन पर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए। सबसे पहले नवीन टेक्नालाजी से सम्बन्धित प्रशिक्षण एवं अनुसंधान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अप्रचलित मशीनों तथा उपस्करों एवं साधनों की अनुपलब्धता की समस्या है। औद्योगिक क्षेत्रक पर अंतर्राष्ट्रीय स्पर्द्धा का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ दबाव पड़ रहा है। इसे जीवित रखने के लिए इसमें तत्काल परिवर्तन करना होगा। ऐसा परिवर्तन तथा उसका समर्थन केवल उसी स्थिति में किया जा सकता है जब आवश्यकता पड़ने पर संबंधित साज सामान जुटाए जाने के अतिरिक्त पाठ्यचर्या का नवीनीकरण एवं उसकी वृद्धि करने के उपाय भी किए जाएं। नये विशेषज्ञों द्वारा मानव संसाध्नों की संख्या में वृद्धि की जाए तथा उपयुक्त शिक्षा सामग्री, पाठ्य पुस्तकें तथा शैक्षिक शिल्प विज्ञान तैयार किया जाए। उच्च प्रशिक्षण प्राप्त व्यावसायिक व्यक्तियों के अलावा तकनीशियनों का भी उतना ही महत्व है क्योंकि औद्योगिक उत्पादकता बढ़ाने के वे ही प्रचालनात्मक साधन हैं। तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए जाने तथा विभिन्न समितियों की सिफारिशों के बावजूद बहुत शिल्पी शिक्षा का अभिविन्यास एवं उसकी गुणवत्ता भारी चिन्ता का विषय है।

महिला तकनीकी शिक्षा की संस्थाओं में अच्छे शिक्षक नहीं आ पाते हैं - यह एक दूसरी मुख्य समस्या है जिसका समाधान कई वर्षों से नहीं हो सका है। डिग्री तथा डिप्लोमा स्तर की संस्थाओं में स्टाफ की स्वीकृत संख्या में सदैव 20 से 30 प्रतिशत पद खाली पड़े रहते हैं। इन तकनीकी संस्थाओं में पढ़ाने के लिए बेहतर छात्र नहीं आते हैं क्योंकि उद्योग में वेतन तथा परिलब्धियाँ इन संस्थाओं के अपेक्षाकृत कहीं अधिक होते हैं।

प्रबन्ध शिक्षा :

उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रबन्ध शिक्षा भी बड़े महत्व का क्षेत्र है। चार भारतीय प्रबन्ध संस्थानों के अतिरिक्त 41 विश्वविद्यालयों में व्यापार प्रशासन स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध है। कुछ ऐसी गैर सरकारी संस्थाएं भी हैं जिनमें प्रबन्ध पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है। इन पाठ्यक्रमों के स्तर और इनकी गुणता के संबंध में भिन्न भिनन विचार सुनने को मिलते हैं। मांग के भारी दबावों को पूरा करने की जल्दी में, बहुत सारी संस्थाएं स्थापित हो गई जिनके पास उपयुक्त मानवीय और आर्थिक साधन नहीं है।

शिक्षक का कार्य निष्पादन शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण निवेश है। जो भी नीतियाँ निर्धारित की जाएं, आखिरकार शिक्षकों को ही इनका निर्वाचन एवं क्रियान्वयन अपने व्यक्तिगत उदाहरण तथा अध्ययन - अध्यापन की प्रक्रियाओं के माध्यम से करना है। हम नवीन शिल्प विज्ञानों के विकास की दहलीज पर खड़े हैं जिनसे पाठशालीयन शिक्षण में क्रान्ति की सम्भावना है किन्तु दुर्भाग्यवश शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या को अद्यतन बनाने की प्रक्रिया बहुत धीमी रही है।

अधिकतर शिक्षक शिक्षा की भविष्य की आवश्यकताओं की तो बात ही नहीं, वर्तमान आवश्यकताओं से भी असंगत है। शिक्षकों की चयन कार्यविधियाँ और भर्ती पद्धतियाँ संख्या और गुणता की दृष्टि से भी समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं रही हैं। शिक्षक से बड़ी आशाएं लगाई जाती है। तथापि नौकरी की दृष्टि से इसको आखिर तरजीह दी जाती है। इसलिए हमारे समक्ष विसंगति यह है कि हमारे पास श्रेष्ठ ग्रन्थ एवं अनुसंधान तो उपलब्ध है परन्तु शिक्षक उतने ही उदासीन है।

कहीं ऊपर के कथन को पूरे शिक्षक वर्ग की बुराई न समझ लिया जाए इसलिए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्तमान पद्धति में जो भी गुणता दिखाई देती है वह वास्तव में ऐसे बहुत से शिक्षकों की वचनबद्धता, परिश्रम तथा नव प्रवर्तन की क्षमता के कारण है जो अपने शिष्यों के कल्याण के लिए पूरी तरह से वचनबद्ध है और वर्तमान शिक्षा प्रणाली में फैले असंतोष तथा कम लाभ और फल के बावजूद जिन्होंने अपने व्यावसायिक दायित्वों के प्रति अपना सब कुछ समर्पित कर दिया है।

शिक्षकों केचयन, उनकी भूमिका, समाज में उनका दर्जा, गुणता तथा प्रशिक्षण के प्रश्न पर भारत सरकार द्वारा गठित दो शिक्षक आयोगों में बड़ी गहराई से विचार किया जा रहा है।

यह सभी का विचार है, विशेषकर स्वयं शिक्षकों का भी कि शिक्षकों का चयन पूर्णतया योग्यता के आधार पर नहीं होता। परिणामतः काफी संख्या में ऐसे व्यक्ति इस व्यवसाय में प्रवेश कर जाते हैं जिनमें न तो शिक्षण के प्रति निहित क्षमता होती है और न ही प्रवृत्ति। हम इस लक्ष्य से भी आंख नहीं मूंद सकते हैं कि विगत कुछ दशकों से शिक्षक दलीय राजनीति में सक्रिय हैं और इससे शिक्षक संगठनों का किस सीमा तक राजनीतिकरण हो चुका है इसका अनुशासन पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा इसने किसी सीमा तक शिक्षकों की चिर प्रतिष्ठित भूमिका को खराब कर दिया है। इसका भी आंकलन करने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालय तथा कालेज के शिक्षकों के लिए योग्यता पदोन्नति की योजना का अर्थ, सेवा की अवधि के आधार पर स्वतः पदोन्नति नहीं था। तथापि इन योजनाओं के कार्यान्वयन के ढंग से उनमें यह अपेक्षा हो गई कि पदोन्नति का आधार सेवा की अवधि होना चाहिए। बहुत से विज्ञ व्यक्ति इस पद्धति के होने वाले परिणामों से चिंतित हैं। वे अनुभव करते हैं कि यदि एक बार सेवा में पदोन्नति का आधार विद्वत्ता तथा क्षमता के स्थान पर सेवा की अवधि को बना दिया गया तो स्वाध्याय प्रयोग और अनुसंधान तथा श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। उत्तर प्रदेश सरकार ने सेवा में पदोन्नति का आधार सेवा अवधि को ही बनाया है जो कि विश्वविद्यालयों की प्रगति के लिए चिंता का विषय है।

राज्य और शिक्षा :

यदि हम इस दृष्टिकोण से देखें तो विकास संगठन श्रेष्ठता तथा समानता के राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह अनविार्य है कि देश का हर बच्चा शैक्षिक उपलब्धि की न्यूनतम रेखा पार कर ले। आज की दुनिया की चुनौतियों का सामना करनेके लिए व्यक्तित्व का विकास करने, अपने परिवेश की सीमाओं और संभावनाओं को समझने, मूल्य व्यवस्था को स्वीकारने, सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरुकता पैदा करने और जीवन से जूझने के लिए विशिष्ट योग्यताओं को पाने के लिए न्यूनतम सतर तक शिक्षा का होना अत्यन्त आवश्यक है। आगामी वर्षों में जीवित रहने के लिए भी शिक्षा के इस स्तर का प्रसार आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में रखे विश्लेषणों और विचारों से बहुत से सामान्य निष्कर्ष सामने आते हैं। सबसे पहला और सबसे अधिक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि संगइन, साधन और नीति संबंधी रूपरेखा कैसी भी क्यों न हो, शिक्षा में सफल या असफल होने का अंतिम निर्णायक तत्व होता है। समाज की इसके प्रति कटिबद्धता और इसके कार्यान्वयन की प्रक्रिया में भाग लेने वालों का लक्ष्य केन्द्रित होना और उनकी सम्पूर्ण निष्ठाका होना। इन दोनों बातों को मानते हुए जो लोग पूरी तरह से सुनिश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति में लगे हुए हैं वे अपने परिवेश की सीमाओं से ऊपर उठकर अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। कटिबद्धता की भावना न होने पर नीतियाँ, चाहे वे सही हों या गलत, बेमतलब हो जाती है।

कोई नीति साकार तभी होती है जब वह कार्यान्वित हो। यदि अध्ययन-अध्यापन की योजनाएं बनाने, उनके लिए साधन जुटाने और इसका क्रियान्वयन करने के काम में लगे हुए अपने काम की गहराई को नहीं समझते या उन्हें लापरवाही से करते हैं तो इन कार्यों के सही परिणाम प्राप्त हो ही नहीं सकते।

विगत दो दशकों में हुए विकास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वांछित सुधार नहीं हुए क्योंकि 1968 में अपनाई गई शिक्षा नीति में जिन विचारों और उद्देश्यों पर जोर दिया गया था

उनके अनुरूप न साधन उपलब्ध हुए ओर न ही शिक्षा के स्वरूप में वह फेर बदल किया गयाकि जिसकी आवश्यकता उस नीति में बताई गई थी।

यदि साधनों की कमी के और व्यवस्थात्मक परिवर्तन के न होने के कारण शिक्षा तन्त्र इस तरह कुंठित न हो गया होता तो आज की शिक्षा की तस्वीर कुछ और ही होती। इसके अतिरिक्त शैक्षिक आयोजक, प्रबन्धक तथा शिक्षक अधिक उद्देश्यपूर्ण भाव तथा आत्म विश्वास के साथ कार्य करने के लिए उद्यत होते।

आज के हालात में शिक्षा की मुख्य भूमिका यह है कि वह गतिहीन समाज में विकास और परिवर्तन लाने की द्रष्टि से उसे जीवंत बनावे। इस काया पलट की महत्वपूर्ण बात यह है कि उससे एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकता है कि: जो जीवनपर्यनत सीखने की प्रक्रिया में जुटा हुआ हो और जिसमें न सिर्फ सभी आयु के व्यक्तियों के लिए शिक्षण व्यवस्था उपलब्ध हो बल्कि हर व्यक्ति आजीवन शिक्षण की ओर अग्रसर हो।

शिक्षा का संबंध भविष्य से होता है और इसका स्वरूप सर्वांगीण होना आवश्यक है। इसलिए इसमें योगदान करने वाले हर व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह शिक्षा को इस परिप्रेक्ष्य में देखे। यदि इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने वाली नई पीढ़ी अपने आपको नई शताब्दी के लिए ठीक तरह समर्थ नहीं पाती है तो वह निश्चय ही आज की पीढ़ी को इसके लिए जिम्मेदार ठहरायेगी। वह इस बहाने को कतई स्वीकार नहीं करेगी कि उनके शिक्षण-प्रशिक्षण में जो दोष रह गये हैं वे केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों के विशेष ढाँचे के कारण थे या प्रशासकीय कमियों के कारण पैदा हुए थे। इस तरह शिक्षा एक राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है।

आर्थिक स्रोतों की द्रष्टि से भारत में आज भी कृषि प्रधान आर्थिक अर्थ व्यवस्था है। यहाँ की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत व्यक्ति कृषि पर निर्भर करता है और इसका मुख्य कारण यह हे कि

हमारे देश में कृषि कार्य आज भी जनशक्ति पर अधिक निर्भर करता है। दूसरा कारण यह भी हे कि हमारे यहाँ वाणिज्य तथा उद्योग के क्षेत्र में कार्य करने के अवसर अपेक्षाकृत कम सुलभ हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के 40 वर्ष के बाद भी हम अपने देश में औद्योगीकरण नहीं कर सके हैं। हमारे देश में आज भी वाणिज्य और उद्योग तथा सरकार के विभिन्न विभागों (प्रशासन, पुलिस, निर्वाण शिक्षा) में कुल मिलाकर 30 प्रतिशत व्यक्ति कार्यरत हैं।

आर्थिक संरचना की दृष्टि से भारत में मिश्रित आर्थिक व्यवस्था है। यहाँ सुरक्षा, रेल, डाक व तार, रसायन और कुछ बड़े उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया है और अन्य सबको निजी क्षेत्र में रखा गया है। सरकार ने कुछ बैंकों व कोयले की खानों का भी राष्ट्रीयकरण किया है। बड़े बड़े उद्योगों को भी सरकार निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में लाने की ओर प्रयत्नशील है।

कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था होने के कारण भारत की राष्ट्रीय आय बहुत कम है। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र में भी कुछ विकास किया है और उससे हमारी राष्ट्रीय आय भी बढ़ी है। परनतु उसके विकास की दर बहुत कम है। राष्ट्रीय आय कम होने से बचत कम होती है और जो बचत होती है उसका अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों में व्यय हो जाता है। बचत के बहुत कम भाग का विनियोग होता है। परिणामतः हमारे आर्थिक विकास की गति बहुत धीमी है। इधर तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या भी हमारे आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है।

हमारी आय का मुख्य स्रोत है कृषि। इसलिए हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है - कृषि का आधुनिकीकरण करना। इसके लिए हमें सामान्य शिक्षा के साथ-साथ कृषि, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का भी विधान करना होगा।

कृषक को कृषि की आधुनिकतम विधियों से परिचित कराकर उन्हें यन्त्रों के प्रयोग की ओर अग्रसर करना आवश्यक है, तभी हमारा उत्पादन बढ़ सकता है। हमें खुशी है कि हमारी सरकार ने इस बीच सामान्य शिक्षा और विशिष्ट शिक्षा दोनों क्षेत्रों संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार का विकास किया है। परिणामतः कृषि के क्षेत्र में उत्पादन बढ़ा है और हम आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं। विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की ओर पिछले 40 वर्षों से हमारा ध्यान गया है। देश भर में तकनीकी स्कूल और इंजीनियरिंग कालेज खुले हैं, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी विकास हुआ है। इससे औद्योगीकरण में भारी सहायता मिली है। प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने के लिए देश में औद्योगीकरण की भी बड़ी आवश्यकता है।

अब हम शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने के उपाय कर रहे हैं, शिक्षा को श्रम केन्द्रित करने पर बल दे रहे हैं और उसे उत्पादन से जोड़ने के लिए कार्यानुभव की शुरुआत की जा चुकी है। शिक्षा को रोजगारपरक बनाने के लिए अनेक कदम उठाए जा चुके हैं। नई शिक्षा नीति में इस बात पर सर्वाधिक बल दिया गया है। सुन्दर भविष्य के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है उचित शैक्षिक आयोजन की। यह कार्य शैक्षिक अर्थशास्त्र का ज्ञाता ही कर सकता है।

शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य :

भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। आज के विश्व में, जो विज्ञान और शिल्प विज्ञान पर आधारित है, लोगों की समृद्धि, कल्याण और सुरक्षा का स्तर शिक्षा द्वारा निर्धारित किया जाता है। हमारे विद्यालयों और कालेजों से निकलने वाले छात्रों की योग्यता एवं संख्या पर ही राष्ट्रीय विकास या पुनर्निर्माण की सफलता निर्भर है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक हो गया है कि -

1. राष्ट्रीय विकास के सम्पूर्ण कार्यक्रम में शिक्षा की भूमिका का फिर से मूल्यांकन करें।
2. यदि शिक्षा को राष्ट्रीय विकास में अपनी भूमिका निभानी है तो शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में जो परिवर्तन आवश्यक है उन्हें हम पहचानें और उनके आधार पर शिक्षा के विकास का कार्यक्रम तैयार करें।
3. यदि हमें राष्ट्रीय विकास की गति तेज करनी है तो शिक्षा सम्बन्धी एक सुलझी हुई, दृढ़ तथा कल्पनापूर्ण नीति तथा शिक्षा में प्राण डालने, उसमें सुधार करने तथा उसका विस्तार करने के लिए दृढ़ संकल्पपूर्ण एवं प्राणमय कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय विकास की समस्याएं :

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य को सफल बनाने के लिए अग्रलिखित समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक है :-

अ. खाद्य सामग्री में आत्मनिर्भरता।

ब. आर्थिक विकास और सबको रोजगार।

स. सामाजिक और राष्ट्रीय एकता।

द राजनैतिक विकास

राजनैतिक चुनौती के कई पहलू हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :-

1. हमें लोकतन्त्र को मजबूत बनाना है।
2. हमें देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है।
3. हमें "प्रत्याशाओं के विस्फोट" को योजनाबद्ध राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम के द्वारा पूरा करना है।

उपरोक्त समस्याओं का हल इस पीढ़ी के भारतीयों से बड़ी अपेक्षाएं रखता है - हमें स्पष्ट दृष्टि, गहरी सूझबूझ, सामुदायिक, अनुशासन कठोर और अविराम श्रम तथा त्यागपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता है। इसके लिए उन अधिक धनी तथा औद्योगिक राष्ट्रों के सहयोग और सहायता की भी आवश्यकता है जिनकी भारत के लोकतान्त्रिक समाजवाद में आस्था है और जिन्हें एक नवीन सामाजिक व्यवस्था का

निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील भारत के संघर्ष से सहानुभूति है।

शिक्षा ही परिवर्तन का प्रमुख साधन है :

यदि बिना किसी हिंसात्मक क्रान्ति के बड़े पैमाने पर परिवर्तन करना है तो केवल एक ही साधन है - वह है शिक्षा। परन्तु शिक्षा जादू की ऐसी छड़ी नहीं है जिसके इशारे पर इच्छाएं सत्य हो जायें। यह एक ऐसा कठिन साधन है जिसके प्रभावी उपयोग के लिए मनोबल, तन्मयतापूर्ण कार्य तथा त्याग की आवश्यकता है। किन्तु यह एक ऐसा विश्वसनीय तथा परीक्षित साधन है जिसने विकास के लिए उनके संघर्ष में अन्य देशों का साथ दिया है। यदि भारतीयों में इच्छा और कौशल है तो भारत में भी शिक्षा राष्ट्रीय विकास के कार्यों को करके दिखा सकती है।

महिला शिक्षा, राष्ट्रीय विकास तथा समृद्धि के कार्य को तभी कर सकती है जब शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली को गुणात्मक तथा संख्यात्मक दोनों ही दृष्टियों से समुचित रूप से संगठित किया जाय।

उपरिवर्णित समस्याओं के हल के लिए शिक्षा का व्यक्तियों के जीवन, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से जोड़ा जाना आवश्यक है। ऐसा करके हम राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। ऐसा तभी किया जा सकता है जब शिक्षा को उत्पादिकता से जोड़ा जाय। शिक्षा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाए। साथ ही वह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में गति लाए। सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देकर चरित्र का निर्माण करने का प्रयास करे। लोकतन्त्र को शासन के रूप में सुदृढ़ करे तथा उसे एक जीवन शैली के रूप में अपनाने में देश की सहायता करें।

सबसे उत्तम सुझाव है - कार्य - अनुभव । शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रों को अपनी शिक्षा से सम्बन्धित कार्य का अनुभव प्राप्त करके बहुत लाभ होगा। उनकी शिक्षा सैद्धान्तिक नहीं रह जायेगी। जैसा कि इस समय है। उनको इस बात का भी अनुभव हो जायेगा कि अपने कार्य व व्यवसाय को किसी प्रकार करें। साथ ही वे अपने पुस्तकीय ज्ञान का प्रयोग अपने व्यावहारिक कार्य में कर सकेंगे। कार्य-अनुभव से एक दूसरा लाभ यह होगा कि छात्र व्यक्तियों और वास्तविक जीवन के सम्पर्क में आयेंगे।

अतः उन्हें जीवन में प्रवेश करते समय किसी कठिनाई का अनुभव नहीं होगा।

कुछ और सुझाव :

1. सार्वजनिक शिक्षा के लिए "सामान्य विद्यालय प्रणाली" को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाय और इस प्रणाली को 20 वर्ष में पूर्ण किया जाय।
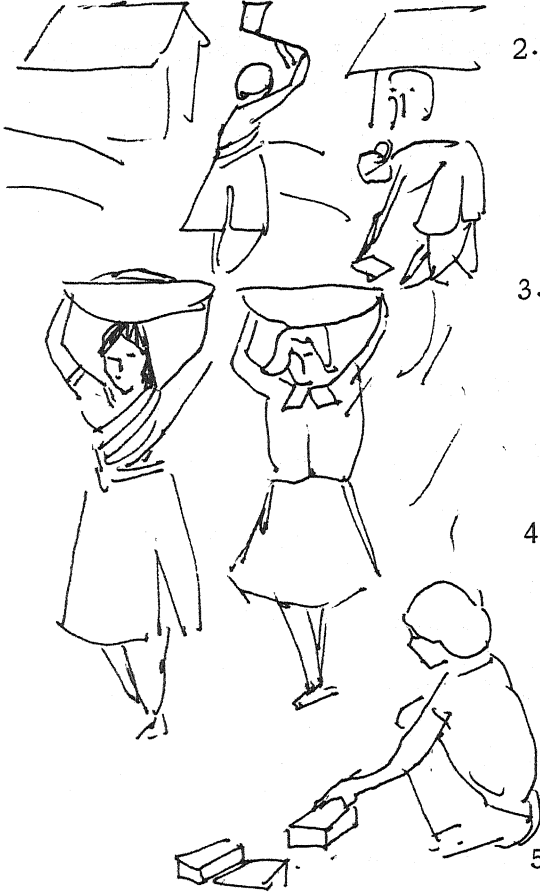
2. शिक्षा के सब स्तरों पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा को सब छात्रों के लिए अनिवार्य कर दिया जाय।
3. सामाजिक और राष्ट्रीय एकता में सहायता देने के लिए उपयुक्त "भाषा नीति" का निर्माण किया जाय।
4. मातृभाषा अर्थात प्रादेशिक भाषा को विद्यालय और उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। इस कार्यक्रम को 10 वर्ष में पूरा कर दिया जाय।
5. प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य, विज्ञान और प्राविधिक पुस्तकोंका प्रकाशन"विश्वविद्यालय अनुदान आयोग" की सहायता से विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाय।
6. अखिल भारतीय शिक्षा संस्थाओं में अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में जारी रखा जाय पर कुछ समय बाद हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान देने पर विचार किया जाय।
7. प्रार्देशिक भाषाओं को उन क्षेत्रों में - जहाँ वे प्रयोग की जाती हैं, जल्दी से जल्दी प्रशासन की भाषाएं बनाया जाय।

8. अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की अन्य भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाय।

9. संसार की कुछ महत्वपूर्ण भाषाओं की शिक्षा के लिए कुछ स्कूल और विश्वविद्यालय स्थापित किए जायें।

10. "उच्च शिक्षा" में साहित्यिक कार्य और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के "विचार विमर्श" के लिए अंग्रेजी को संयोजक का रूप दिया जाय।

11. बी0 ए0 और एम0 ए0 के स्तरों पर दो भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधा दी जाय।

12. सांस्कृतिक विरासत के ज्ञान के विकास और पुनः मूल्यांकन के लिए भाषाओं, साहित्य, दर्शन, धर्म और भारतीय इतिहास के शिक्षण को अच्छी तरह से नियोजित किया जाय।

13. राष्ट्र की मुख्य धारा में रहने और जागरुकता उत्पन्न करने के लिए नागरिकता, संविधान के सिद्धान्तों और लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज के स्वरूप को पाठ्यक्रमों में स्थान दिया जाय।

14. सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में आधुनिकीकरण करने के लिए विज्ञान पर आधारित टेक्नालाजी को अपनाया जाय।

15. शिक्षा के द्वारा उत्सुकता को जाग्रत किया जाय और उचित दृष्टिकोणों तथा मान्यताओं का विकास किया जाय।

16. शिक्षा के द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन, स्वतन्त्र विचार और स्वतन्त्र निर्णय की आदतों का निर्माण किया जाय।

17. सामान्य व्यक्ति के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाया जाय और एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण किया जाय, जिसमें समाज के सभी अंगों के व्यक्ति हों और उनके विश्वासों तथा आकांक्षाओं पर गहरी भारतीय छाप लगी हो।

शोधार्थियों से आग्रह / सुझाव :

उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल अत्यन्त विशाल है और भारतवर्ष का सर्वाधिक आबादी वाला यह प्रदेश बेकारी, बेरोजगारी, अशिक्षा-कुशिक्षा, अराजकता, अनुशासनहीनता एवं कामचोरी आदि आदि विपुल

समस्याओं से कराह रहा है। इसमें जब हम शिक्षा की ओर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि उच्च शिक्षा का क्षेत्र अत्यनत विस्तृत है। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं संस्थानों की भारी संख्या तथा उनकी अपनी तरह तरह की समस्याएं हैं। इन समस्याओं की जानकारी और उनका गहन अध्ययन करके किसी निश्चित और विश्वसनीय निष्कर्ष पर पहुँचना तथा उसके समाधान के लिए सुझाव देना एक बड़ा कार्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध ग्रन्थ उस दिशा में किये गये अक्षम प्रयास का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में चौदह अध्याय हैं इसके कुछ अध्यायों - उच्च शिक्षा के उद्देश्य और उसके अनुसार उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम, उच्च शिक्षा में शिक्षक, उच्च शिक्षा में परीक्षा पद्धति, उच्च शिक्षा और विद्यार्थी, उच्च शिक्श्क्षा का प्रशासन तथा उच्च शिक्षा काम और रोजगार आदि ऐसे महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत विषय हैं जिन पर प्रत्येक विषय में अलग अलग शोध करने की महती आवश्यकता है तभी हम किसी सूक्ष्म एवं निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं और इन खोजों से ऐसा दस्तावेज तैयार हो सकता है जो छात्रों, शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा तथा जिसके माध्यम से स्वच्छ एवं प्रभावशाली शैक्षिक व्यवस्था का विकास कर सम्पूर्ण शिक्षा जगत के बहुमुखी उत्थान हेतु मदद मिल सकेगी।
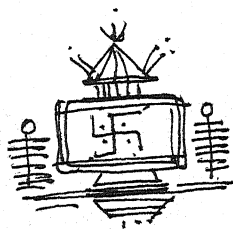
BIBLIOGRAPHY

1. Aggrawal, J.C., Progress of Education in free India Modern Indian Education and its Problems (Arya Book Deptt., New Delhi, 1977).

2. Aggrawal, J.C., National Policy in Education 1979, A Global view, (Delhi, Arya Book Deptt., 1979).

3. Agrawal, S.N., Some problems of Indias Population (Vira & Co. Publishers Private Ltd., Bombay, Allahabad).

4. Altekar, A.S., Education in ancient India (Banaras : Nand Kishore & Brothers, 1957).

5. Arora, J. Current Problems in Indian Education (Dhanpat Rai & Sons).

6. Basu, A.N., Primary Education in India (Indian Associated Publishing Co., 1946).

7. Basu, A.N. Education in Modern India (Calcutta, Orient Book Co., 1947).

8. Bhatta, B.D. and Aggrawal J.C., Educational Documents in India, 1813-1968. (Survey of India Education), Arya Book Deptt., New Delhi, 1969.

9. Bhatnagar, P.P., (1961). District Census Hand Book Uttar Pradesh (Varanasi).

10. Bokil, V.P., The History of Education in India (Bombay : Labour Press, Girpaon 1925).

11. Briggs, G.W. (1920). The Chamars Calcutta. Page - 19.

12. Buch, M.B., (Editor), A survey of research in Education.

13. Buch, M.B., Second Survey of research in education (1977-78).

14. Coomaras Wamy, A.K., The Industrial art of India Coon, C.S., (1950), A Reader in General Antrology, London, Page - 489.

15. Crooke, W., (1968), The Popula Religion and Folkfore of Northern India, Vol. I, Delhi, Page 170.

16. Crooke, W., Religion and Folklore of Northern India (New Delhi), Page 421.

17. Desai, Dinker, Primary Education in India (Bombay, Servants of India Society 1938.

18. Dayal, B., The Development of Modern (Calcutta, Orient Book Co. 1947).

19. Directory, Chandigarh (All India Directories, Publishers, (1972).

20. Estimates Committee, Elementary Education, (Delhi-Lok Sabha Secretariate, 1958.

21. Eyles, J., (1947), "Social Theory and Social Geography" Progress in Geography, Vol. 6, (London, Edward Arnold). Page 22-87.

22. Ghurye, G.S., Caste and Class in India, Year Popular Book Deptt., Bombay.

23. Government of India, Education in the States, 1958-59. (Delhi, Publications Division 1961).

24. Government Publication, The U.P. Primary Education Act. 1919.

25. Govt. Publication, U.P. Municipality Act. 1916-Sce. 68(1).

26. Govt. Publication U.P. Corporation & District Board Act, 1961, Sec. 43(2).

27. Govt. Printing Press U.P., Annual Report of the State of Uttar Pradesh 1963-64 Vol. I & II Sup. Vol. I.

28. Information Deptt. U.P. (Govt. Press Lucknow), Annual Report of the state of U.P., 1964-65 (Vol. I).

29. Information & Publication Deptt. U.P. Lucknow Uttar Pradesh 1975.

30. Indian Ministry of Education, Education in India (Annual) (Delhi Manager Publication).

31. Indian Ministry of Education, Education in State (Annual) (Delhi Manager Publication).

32. Keay, F.E.,j History of Education in India & Pakistan., Indian Education in Ancient & Later times., (London: Oxford University Press Humphrey & Milfond 1942).

33. Mazumbdar, N.N., A History of Education in Ancient India.

34. Mazumbdar, R.C., Histcry of Culture of the Indian People.

35. Mukerji, S.N., Administration of education in India (Modern Period). (Baroda, Acharya Book Depot, 1959).

36. Mukerji, S.N., Education in India Today and Tomorrow Archarya Book Depot, Raopura Road, Baroda - 1960.

37. Mukerji, S.N., History of Education in India (Modern Period) (Baroda, Acharya Book Depot, 1959).

38. May, 81, Enrolement in Primary Education (U.P. Development Systems Corp. 9 Sarojini Naidu Marg, Lucknow - 226001).

39. Mazumdar, N.N., A History of Education in Ancient India.

40. Mazumdar, R.C. History and culture of the Indian people.

41. Ministry of Education, Report of the First meeting of the All India Council for elementary education (Delhi Manager of Publications, 1958).

42. Ministry of Education, Report for the All India Council for Elementary education. (New Delhi, 1958).

43. Ministry of education, Education in the states 1956-57 (New Delhi 1959).

44. Mukerji, S.N., History of education in India (Modern-period). (Baroda Acharya Book Depot, 1959).

45. Mukerji, S.N., Education in India Today & Tomorrow (Acharya Book Depot, Raopura Road, Baroda, 1960).

46. Mukerji, S.N., Administration of education in India. (Acharya Book Depot, Raopura Road, Baroda - 1962).

47. M. Sultan Mohiyuddin School Organization & Management, (West Pak Publishing Co. ltd., Lohara, Islamabad).

48. Mukerji, A.B., (1980). "The chamars of Uttar Pradesh : A study in social Geography (Delhi 1980), Page 13-23.

49. Mishra, A.N., Financing education in India. (Allahabad, Garg Bros., 1959).

50. Mishra, Dr. A.N., Education for internal understanding (Article) Ext. Sen. Deptt. College of education, Kurukshetra March 1968 P. No. 19).

51. Ministry of Culture & Social Welfare. Education quaterly (R.N. 512 C. Wing Sastry Bhawan, New Delhi).

52. N.C.E.R.T., Review of Education in India (1947-61) to (1961-85) (Delhi, Ministry of education 1961).

53. Naik, J.P., Education Commission, 1964-66, (Chitragupta Prakashan, Purani Mandi, Ajmer (Rajasthan).

54. Naik, J.P., Studies in primary education, (The Local self government institute, Bombay, 1942).

55. Naik, J.P., The Single Teacher School, (Ministry of education Government of India, Delhi).

56. Naik, J.P., Elementary education in India. (The Unifinished Business), Asia Publishing House, Madras).

57. Naik, J.P., Elementary education in India A Promise tc keep (Allied Publishers, Madras).

58. Narullah, S. and Naik, J.P., A History of education in India (Bombay, Macmillan, 1951).

59. Nurullah, S. & Naik, J.P., A Student's Histcry of education in Indian. (Macmillan and Co., Limited, Bombay, Calcutta, Madras, London, 1964).

60. Ojha Pandit Gopesh Kumar, Progress of Compulsory Education in India 1951-66 (A Universal Publication, Post Box No. 1092, Delhi-6).

61. Opler, M.E. and Singh R.D. (1952). Two villages of Uttar Pradesh, India : An analysis of similarities and differences, American Anthropologist, 53 (1952), Page 187.

62. Raja, C. Kunhan, Some Aspects of Education in Ancient India (Madras, The Adyar Library, 1950).

63. Rawat, Dr. P.L. History of India Education (Ram Prasad and Sons). Agra & Bhopal.

64. Sachchidanand, (1977), The Harijan Elite, Delhi, Page 4.

65. Saiyidain, K.G., Naik, J.P. and Abid, Hussain, S. Compulsory Education in India (1951-56). (A Universal Publication, Post Box No. 1092, Delhi, 6).

66. Saiyidain, K.G. and Sharma, R., Factors of Indian Education N.C.E.R.T., New Delhi, 1971 (Po;ulation Trends, resources and environment Hand Book on population education).

67. Saiyidain, K.G., Primary Education in India, (Peris and UNESCO, 1953).

68. Saiyidain, K.G., Problem of Educational Reconstruction, (Asia Publishing House, Bombay, 1962).

69. Second Lok Sabha's Estimate Committee's Report Elementary Education (New Delhi-Lok Sabha Secretariate, 1958).

70. Sen, J.M. History of Elementary Education in India. (Calcutta Book Co., 1943).

71. Sears, J.B. The Nature of Administrative Process. (New York, Mc. Mr. Hill Book Co. INC. 1950).

72. State Govt. Publication The U.P. District Board Primary Education Act-1926.

73. State Govt. Publication Uttar Pradesh Mahapalika Adbiniyam, 1959.

74. Shrimali, K.L., Problem of Education in India, (New Delhi, Publication Division, 1961).

75. Singer, M. (1975). Traditional India, (Jaipur), Page 207-15.

76. Supdt. Printing & Stationary Lucknow 1957. U.P. Punchayat Raj Rules.

77. Supdt. of Govt. printing stationary India (Allahabad) Compulsory Primary Education Mannual. (Hindi Version 1 April - 1943).

78. Tiwari, Dr. D.D., Primary Education in India, (Ram Narain Lal Beni Madho, Allahabad - 2).

79. Tiwari, Dr. D.D., Primary Education in India (Ram Narain Lal Beni Madho, Allahabad - 2).

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची (हिन्दी)

****

1\. : शिक्षा की प्रगति - 1981 - 1989
शिक्षा निदेशालय, उ0 प्र0 इलाहाबाद।

2\. : शिक्षा आयोग की रिपोर्ट,
शिक्षा और 1964-66, राष्ट्रीय विकास शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार।

3\. : शिक्षा के सम्बन्ध में परिप्रेक्ष्य पर्चा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की समीक्षा समिति, नई दिल्ली, सितम्बर 1990

4\. नारायण, जय प्रकाश : शिक्षण और शान्ति (मैसूर विश्वविद्यालय में किया गया दीक्षान्त भाषण), सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 29 नवम्बर, 1965

5\. मिश्र, डा0 आत्मानन्द : नव्य शिक्षण कला, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर।

6\. माथुर, डा0 एस0 एस0 : विद्यालय संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ - 2

7\. मलैया, के0सी0 एवं मलैया डा0 विद्यावती : शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण
मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन कमीशन) 1948-49, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार

9\. : भारतीय विश्वविद्यालय आयोग - 1902

10\. लाल, रामन बिहारी : शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त - रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।

11\. सुखिया, एस0 पी0 मेहरोत्रा, पी0 बी0 मेहरोत्रा, आर0 एन : शैक्षिक अनुसन्धान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

12\. गुप्त, बी0 आर0 : भारतीय शिक्षा का इतिहास (तत्कालीन समस्याओं सहित) रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ।

13\. : वार्षिक कार्य विवरण, 1989, प्रशिक्षण एवं सेवायोजन निदेशालय, उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित।

14\. : वार्षिक कार्य विवरण 1990
प्रशिक्षण एवं सेवायोजन निदेशालय, उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित।

15. आर्यनायकस, ई0 डब्लू0 : बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा वर्धा शिक्षा परिषद, 1937 और जाकिर हुसैन समिति का विवरण। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवा ग्राम, वर्धा, मध्य प्रान्त, 1957

16. तदैव : सातवें अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा सम्मेलन का विवरण, 1951, प्रकाशन - उपरोक्त, 1952

17. तदैव : अखिल भारत उत्तर बुनियादी शिक्षा सम्मेलन, सेवाग्राम, 1956, प्रकाशन - तदैव, 1956

18. तदैव : ग्यारहवाँ अखिल भारतीय तालीम सम्मेलन, 1956 प्रकाशन-तदैव, 1956

19. : कार्योन्मुख विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की संकल्पना। अखिल भारतीय नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, 1976

20. गान्धी, मो0क0 : बुनियादी शिक्षा, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1956

21. विनोवा : सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1973

22. मजूमदार, धीरेन्द्र : नयी तालीम, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1955

23. लिविंग्स्टर, रिचर्ड : शिक्षा की कुछ समस्याएं, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा0 लि0, बम्बई, 1956

24. गैड डी0 एन0 तथा शर्मा, आर0 पी0: शैक्षिक एवं माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था, राम प्रसाद एण्ड सन्स, लखनऊ।

25. जायसवाल, डा0 सीताराम : भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।

26. जायसवाल, डा0 सीताराम, : भारतीय शिक्षाका इतिहास, प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ।

27. जायसवाल, एस0 आर0 : शिक्षा विज्ञान कोष, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली।

28. : जिला-अधिकारियों द्वारा प्रकाशित, जिला वार्षिक योजना और पंचवर्षीय जिला योजना। उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिला से अलग वर्षों में प्रकाशित।

29. : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, चौथी पंचवर्षीय योजना 1969-74, संक्षिप्त।

30. : प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, भारत इण्डिया, सन् 1950 से 1981 तक।

31. हेगड़े, के0 सदानन्द : भारत का संविधान में राज्यनीति के निर्देशन तत्व (प्रकाशक रिसर्च, दिल्ली)

32. : हरिजन एवं समाज कल्याण समिति, उत्तर प्रदेश (प्रकाशन) वार्षिक प्रत्यावेदन, 1980

33. : हिन्दी अनुवाद, भारत का संविधान, संविधान के 44वें संशोधन सहित 1981, सेन्ट्रल ला एजेन्सी, इलाहाबाद-2

34. पाठक, पी0डी0 एवं त्यागी जी0 एस0 डी0 : आधुनिक भारतीय शिक्षा का इतिहास और समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

35. पाठक, एस0 पी0 तथा शर्मा, एम0 डी0 : भारतीय शिक्षा की तत्कालीन समस्यायें, रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ।

36. मिश्रा, डा0 ए0 एन0, : शिक्षा - कोष, ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर।

37. मिश्रा, डा0 डी0 सी0 : शोध प्रबन्ध, 1982, अनुच्छेद - 45

38. मिश्रा, डा0 आत्मा नन्द : भारतीय शिक्षा की वित्त व्यवस्था, भोपाल : मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, 1973

39. माथुर, डा0 एस0 एस0 : विद्यालय संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।

40. रस्तोगी, डा0 कृष्ण गोपाल : भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, मेरठ।

41. : रजत जयन्ती संस्करण, भारत का संविधान, 1 जनवरी, 1973 में संशोधित (भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय न्यू रोज प्रिन्टिंग प्रेस, रानी झाँसी मार्ग, नई दिल्ली - 55

42. राजकीय प्रकाशन, इलाहाबाद : अर्थ एवं संख्या विभाग की रिपोर्ट, नम्बर 51, 61, 71, 81.

43. : राज्य नियोजन संस्थान, अर्थ एवं संख्या विभाग, सांख्यकीय पत्रिका, उत्तर प्रदेश जनगणना प्रतिवेदन, लखनऊ (जिलेवार)

44. : राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद, संस्थान संचार, अंक 55, 56, 57, वर्ष 1979-80

45. : राज्य स्थान प्रकाशन, मनोरमा वार्षिकी, 1980

46. रोशनलाल : निर्देशक, हरिजन एवं कल्याण विभाग, लखनऊ (1976), निदेशालय, हरिजन एवं समाज कल्याण द्वारा प्रसारित।

47. रामरतन राम : हरिजन एवं समाज कल्याण उत्तर प्रदेश (9183-1984) निदेशालय, हरिजन एवं समाज कल्याण उत्तर प्रदेश (1983-84) द्वारा प्रसारित।

48. सारस्वत, डा0 एम0 तथा प्रो0 मदनमोहन : भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें (कैलाश प्रकाशन, कल्यानी देवी, इलाहाबाद)

49. : सूचना विभाग, उ0 प्र0 लखनऊ, उ0 प्र0 राज्य वार्षिक रिपोर्ट 1963-64 (अधीक्षक राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, उ0 प्र0 लखनऊ) 1967

50. सुरेश भटनागर : आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं उनकी समस्याएं, 1989

51. : सूचना विभाग, उ0 प्र0, उ0 प्र0 राज्य वार्षिक रिपोर्ट (1964-64) खण्ड - 1

52. साहनी निर्मल तथा मिथलेश कुमार : जन शिक्षा, (जनसंख्या केन्द्र, भारत जनसंख्या परियोजना, इन्द्रा नगर (फैजाबाद रोड), उ0 प्र0 लखनऊ।

53. शर्मा, सी0 पी0 : भारत का संविधान, (यूनीवर्सल बुक डिपो, जयपुर)

54. : शिक्षा निदेशालय, उ0 प्र0 इलाहाबाद, शिक्षा की प्रगति, 1950 से 75 तथा 1979-80 एवं 1980-81

55. : शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, तृतीय अखिल भारतीय सर्वेक्षण (उ0 प्र0 1973-74)

56. : शिक्षा मंत्रालय, राज्य सरकार, उ0 प्र0 लखनऊ, "पंचवर्षीय योजना", प्रथम पंचवर्षीय योजना, 1951-56 द्वितीय पंचवर्षीय योजना, 1956-61, तृतीय पंचवर्षीय योजना, 1961-66, चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, 1969-74

पत्र-पत्रिकाएं

1. गाँधी मार्ग : गान्धी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
2. दैनिक जागरण : कानपुर
3. आज : वाराणसी, कानपुर
4. स्वतन्त्र भारत : लखनऊ
5. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
6. रविवार
7. इण्डिया टूडे